श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १५ अंक ५

जैनहितैषी

फाल्गुन सं० २४४७ । मार्च सन् १९२१

विषय-सूची ।

१—जैनधर्म (ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी)	... ...	१२९
२—तीर्थोंके झगड़ोंका रहस्य (ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी)	...	१३०
३—हाथी गुफाका शिलालेख (ले० स्व० कुमार देवेन्द्र प्रसाद)	...	१३८
४—सनातनी हिन्दू (म० गांधीके एक लेखका अनुवाद)	...	१४६
५—दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रन्थ (सम्पादक)	...	१५२
६—सेठ चिरंजीलालका दान (ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी)	...	१५५
७—देवेन्द्र वियोग (सम्पादक)	...	१५८
८—पुस्तक परिचय	...	१५९

प्रार्थनाएँ ।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिये नहीं निकाला जाता है । इसके लिये समय, शक्ति और धनका जो व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिये; अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए ।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें, अवश्य सुना दिया करें ।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक व सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिये सविनय निवेदन है ।

४ लेख भेजनेके लिये सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है ।

सम्पादक ।

सम्पादक, बाबू जुगुलकिशोर मुख्तार ।

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नियमावली।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य ३) तीन रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरम्भसे किये जाते हैं और बीचमें ७वें अंकसे। आधे वर्षका मल्य १॥)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य ।) चार आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तक आदि

'बाबू जुगुलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर—

जैन ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

पुष्पलता।

हिन्दीमें एक नये लेखककी लिखी हुई अपूर्व गल्पें। प्रत्येक गल्प मनोरंजक, शिक्षाप्रद और भावपूर्ण है। सभी गल्पें स्वतन्त्र हैं और हिन्दीसाहित्यके लिये गौरवकी चीज हैं। जो लोग अनुवाद ग्रन्थोंसे अरुचि रखते हैं उन्हें यह मौलिक गल्पग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए। ७—८ चित्रोंसे पुस्तक और भी सुन्दर हो गई है। हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका यह ४१वाँ ग्रन्थ है। मूल्य १) सजिल्दका १॥)

आनंदकी पगडंडियाँ।

जेम्स एलेन अँगरेजीके बड़े ही प्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक हैं। उनके ग्रन्थ बड़े ही मार्मिक और शान्तिप्रद गिने जाते हैं। अँगरेजीमें उनका बड़ा मान है। यह ग्रन्थ उन्हींके 'Byways of Blessedness' नामक ग्रन्थका अनुवाद है। प्रत्येक विवेकी और विचारशील पुरुषको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य १) सजिल्दका १॥)

सुखदास।

जार्ज-ईलियटके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'साइलस मारनर' का हिन्दी रूपान्तर। इस पुस्तकको हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ उपन्यास-लेखक श्रीयुत् प्रेमचन्दजीने लिखा है। बढ़िया एण्टिक पेपर पर बड़ी ही सुन्दरतासे छपाया गया है। उपन्यास बहुत ही अच्छा और भावपूर्ण है। मूल्य ॥=)

नये ग्रंथ।

१ स्वाधीनता—जान स्टुअर्ट मिलकी 'लिबर्टी'का अनुवाद। यह ग्रन्थ बहुत दिनोंसे मिलता नहीं था, इसलिये फिरसे छपाया गया है। 'स्वाधीनता'की इतनी अच्छी तात्विक आलोचना आपको कहीं न मिलेगी। प्रत्येक विचारशीलको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य २) सजिल्दका २॥)

२ ज्ञान और कर्म—हिन्दीमें अपूर्व तात्विक ग्रन्थ। कलकत्ता हाईकोर्टके जज स्वर्गीय सर गुरुदास बन्धोपाध्यायके लिखे हुए सुप्रसिद्ध ग्रन्थका अनुवाद। इसमें मनुष्यके इहलोक और परलोक-सम्बन्धी सभी विषयोंकी बड़ी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की गई है। बहुत बड़ा ग्रन्थ है। मूल्य ३) सजिल्दका ३॥)

३ जान स्टुअर्ट मिल—स्वाधीनताके मूल लेखकका अतिशय शिक्षाप्रद और पढ़ने योग्य जीवनचरित। अबकी बार यह जुदा छपाया गया है। मूल्य ॥=)

दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास—लेखक, पं० भवानीदयालजी, ३५ चित्रोंसे युक्त। मूल्य ३॥)

रूसकी राज्यक्रान्ति—लेखक, पं० रमाशंकर अवस्थी। २३ चित्रोंसे सुशोभित। मू० २॥)

तमाखूसे हानि—पं० हनुमत्प्रसादजी वैद्यकृत। मू० ।≡)

मलावरोध-चिकित्सा—" " मू० ।≡)

फिजीमें भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध-कुलीप्रथा—लेखक, एक भारतीय हृदय। मूल्य १)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

पन्द्रहवाँ भाग । अंक ५

जैनहितैषी ।

फाल्गुन २४४९ मार्च १९२३

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

जैन धर्म ।

(ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी ।)

कहाँ वह जैन धर्म भगवान् !

जाने जगको सत्य सुझायो, टालि अटल अज्ञान ।
वस्तु-तत्त्वपै कियो प्रतिष्ठित, अनुपम निज विज्ञान ॥ कहाँ० १

साम्यवादको प्रकृत प्रचारक, परम अहिंसावान ।
नीच-ऊँच निर्धनी-धनी पै, जाकी दृष्टि समान ॥ कहाँ० २

देवतुल्य चाण्डाल बतायो, जो है समकितवान ।
शूद्र, म्लेच्छ, पशुहूने पायो समवसरणमें स्थान ॥ कहाँ० ३

सती-दाह गिरिपात जीवबलि, मांसाशन, मदपान ।
देवमूढ़ता आदि मेटि सब, कियो जगत्कल्यान ॥ कहाँ० ४

कट्टर बैरीहूपै जाकी, क्षमा दयामय बान ।
हठ तजि कियो अनेक मतनको, सामंजस्यविधान ॥ कहाँ० ५

अब तौ रूप भयो कछु औरहि, सकहिं न हम पहिचान ।
समता सत्यप्रेमने इक सँग, यातें कियो पयान ॥ कहाँ० ६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थोंके झगड़ोंका रहस्य।

(ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार।)

[लेखक—श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी।]

अब समय आ गया है कि हम लोग अपने दिगम्बरी और श्वेताम्बरी भाइयोंके बीचके झगड़ोंके सम्बन्धमें कुछ गहराईके साथ विचार करें और जाँच करें कि इनकी असलियत क्या है, ये क्यों शुरू हुए, कब से शुरू हुए और आगे कभी इनका अन्त भी होगा या नहीं।

१—पूर्व कालके तीर्थक्षेत्रों और वर्तमानके तीर्थोंमें ज़मीन आसमानका अन्तर पड़ गया है। साधारण लोग तो उस अन्तरकी कल्पना भी नहीं कर सकते। शत्रुंजय और सोनागिरि पर्वत इस समय जिस तरह नीचेसे ऊपर तक मन्दिरोंसे ढँक गये हैं, पहले इनकी यह दशा नहीं थी। ये सब मन्दिर बहुतही अर्वाचीन हैं। जिस तरह अनेक तीर्थोंपर इस समय भी एक एक दो दो मन्दिर ही देखे जाते हैं, उसी तरह जान पड़ता है, पहले सभी तीर्थोंका लगभग ऐसा ही हाल था। पहले इन पर्वतोंपर बहुत करके चरण-चिह्नोंकी ही स्थापना थी। उन्हींकी सब लोग भक्तिभावसे पूजा वन्दना करते थे; और इस कारण जुदा जुदा सम्प्रदायोंके बीचमें झगड़ेका कोई कारण ही उपस्थित नहीं होता था। दिगम्बर-श्वेताम्बर ही क्यों, दूसरे भावुक अजैनोंको भी अपनी श्रद्धाभक्ति चरितार्थ करनेके लिए वहाँ कोई रुकावट नहीं थी।

२—प्रायः जितने जैन तीर्थ हैं, वे सब विपुलजनाकीर्ण नगरों और सब प्रकारके कोलाहलसे दूर, ऊँचे पर्वतोंपर और वनोंके बीच स्थापित हैं। इस धर्मकी प्रकृति ही ऐसी है कि वह संसारके कोलाहलोंसे दूर, निर्जन और शान्त स्थानोंमें रहनेकी प्रेरणा करती है। मुनि और साधुजन ऐसे ही स्थानोंको पसन्द करते थे और उन्हींकी स्मृतिकी रक्षाके लिए स्मारकस्वरूप—ये सब तीर्थ स्थापित हुए थे।

३—इन स्मारकोंके दर्शन करनेके लिए और अपने भक्तिभावोंको चरितार्थ करनेके लिए बहुत दूर दूरके भक्तजन आया करते थे; परन्तु फिर भी किसीके द्वारा इन स्थानोंकी एकान्त शान्तता नष्ट करनेका प्रयत्न नहीं किया जाता था; क्योंकि इन एकान्त स्थानोंमें संसारत्यागी और शान्ति-प्रयासी साधुजन रहते थे और ध्यान अध्ययन किया करते थे। गृहस्थजन इन बातोंको जानते थे और इस कारण वे भक्तिपूरित होनेपर भी तीर्थोंकी इस शान्तिमें बाधा डालना उचित नहीं समझते थे।

४—परन्तु आगे यह बात न रही। भगवद्गुणभद्राचार्यके शब्दोंमें साधुजन स्वयंही मृगोंके समान भयभीत होकर बनोंको छोड़कर गाँवोंके समीप आकर रहने लगे और गृहस्थोंके साथ उनकी सन्निकटता बढ़ने लगी। धीरे धीरे चैत्यवासकी जड़ जमी और अन्तमें मुनिमार्ग शिथिल होकर मठवासी भट्टारकों या महन्तोंके रूपमें परिणत हो गया। साधुओंकी इस शिथिलताने चैत्यों और मन्दिरोंका प्रभाव बहुत बढ़ा दिया और जैन धर्मकी प्रभावनाका सबसे बड़ा द्वार यही करार दिया गया। भगवान समन्तभद्रके प्रभावनांगके इस श्रेष्ठ लक्षणको लोग एक तरहसे भूल ही गये कि "अज्ञानांधकारको जैसे बने, वैसे हटाकर जैनशासनके माहात्म्यको प्रकट करना ही सच्ची प्रभावना है।" इसके बदलेमें यह उपदेश दिया जाने लगा कि इमलोके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक पत्तेके बराबर मन्दिर बनाकर उसमें सरसोंके दानेके बराबर भी प्रतिमा स्थापन करनेवाले गृहस्थके पुण्यका वर्णन नहीं किया जा सकता! इसका फल यह हुआ कि मन्दिरों और प्रतिमाओंके बनवाने और स्थापन करानेकी बाबत लोगोंपर एक प्रकारका खब्त सवार हो गया। लोग आँख बन्द करके इसी कामकी ओर झुक पड़े। इतिहास साक्षी है कि पिछले ५००–६०० वर्षोंमें जैन-सम्प्रदायके अनुयायियोंने अपने धर्मके नामसे यदि कुछ किया है तो वह बहुत करके मन्दिरों और प्रतिमाओंकी वृद्धि करनेका ही काम है।

५—ये चैत्यवासी और मठवासी साधु दोनों ही सम्प्रदायोंमे हो गये थे; बल्कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें तो यह शिथिलता और भी पहलेसे प्रविष्ट हो गई थी। इन साधुजनोंके उपदेशसे तीर्थोंमें भी मन्दिर बनाये जाने लगे और नये नये तीर्थ–अतिशयक्षेत्र आदि नामोंसे–स्थापित होने लगे। इन मन्दिरों और तीर्थोंके व्यय-निर्वाहके लिए धन-संग्रह किया जाने लगा, धन-संग्रह करनेकी नई नई तरकीबें निकाली गईं और प्रबन्धके लिए कोठियाँ तक खुल गईं! बहुतसी कोठयोंकी मालिकी भी धीरे धीरे भट्टारकों और महन्तोंके अधिकारमें आ गई और अन्तमें उसने एक प्रकारसे धार्मिक दूकानदारीका रूप धारण कर लिया। यदि इस बीचमें दिगम्बर सम्प्रदायमें तेरह पंथका और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें संवेगी साधुओंका उदय न होता तो यह दूकानदारी कौनसा रूप धारण कर लेती, इसकी कल्पना करना भी कठिन है।

६—यह सब हो गया था, तो भी तीर्थोंके लिये दिगम्बरी और श्वेताम्बरी झगड़ोंका सूत्रपात नहीं हुआ था। क्योंकि एक तो पहले तीर्थों पर तीर्थंकरों या सिद्धोंके चरणोंकी पूजा होती थी और वे चरण दोनोंको समान रूपसे पूज्य थे। दूसरे इस बातके भी प्रमाण मिलते हैं कि पहले दिगम्बरी और श्वेताम्बरी प्रतिमाओंमें कोई भेद न था। दोनों ही नग्न प्रतिमाओंको पूजते थे। जैनहितैषी भाग १३ अंक ६ में इस विषयपर एक श्वेताम्बर-विद्वानका लेख प्रकाशित हुआ है जो अवश्य पठनीय है। उसमें बतलाया है कि मथुराके कंकाली टीलेमें जो लगभग दो हजार वर्षकी प्राचीन प्रतिमाएँ मिली हैं, वे नग्न हैं और उन पर जो लेख हैं, वे श्वेताम्बर स्थविरावलीके अनुसार हैं। इसके सिवा १७ वीं शताब्दीमें श्वेताम्बर विद्वान्, पं० धर्मसागर उपाध्यायने अपने 'प्रवचन परीक्षा' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि "गिरनार और शत्रुंजय पर एक समय दोनों सम्प्रदायोंमें झगड़ा हुआ, और उसमें शासन देवताकी कृपासे दिगम्बरोंका पराजय हुआ। जब इन दोनों तीर्थोंपर श्वेताम्बर सम्प्रदायका अधिकार सिद्ध हो गया, तब आगे किसी प्रकारका झगड़ा न होने पावे, इसके लिए श्वेताम्बर संघने यह निश्चय किया कि आगे जो नई प्रतिमाएँ बनवाई जायँ, उनके पादमूलमें वस्त्रका चिह्न बना दिया जाय। यह सुनकर दिगम्बरियोंको क्रोध आ गया और उन्होंने अपनी प्रतिमाओंको स्पष्ट नग्न बनाना शुरू कर दिया। यही कारण है कि संप्रति राजा (अशोकके पौत्र) आदिकी बनवाई हुई प्रतिमाओंपर वस्त्र-लांछन नहीं है और आधुनिक प्रतिमाओंपर है। पूर्वकी प्रतिमाओंपर वस्त्र-लांछन भी नहीं है और स्पष्ट नग्नत्व भी नहीं है।" इससे कमसे कम यह बात अच्छी तरह सिद्ध होती है कि दोनोंके विवादके पहले दोनोंकी प्रतिमाओंमें भेद नहीं होता था और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस कारण दोनों एकत्र होकर अपनी उपासना-वृत्तिको चरितार्थ करते थे। उस समय तक लड़ने-झगड़नेका कोई कारण ही नहीं था। परन्तु अब तो दोनों-की प्रतिमाओं और उपासना-विधिमें इतना अन्तर पड़ गया है कि उसपर विचार करनेसे आश्चर्य होता है। पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि गुजरातके कई प्रसिद्ध शहरोंमें जिनेन्द्र भगवानके विम्ब कोट-कमीज तक पहनते हैं और हमारे एक मित्रने तो एक भगवानको जेब-घड़ीसे भी सुशोभित देखा है! वीत-राग भगवानकी उनके भक्तों द्वारा इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है?

७—श्वेताम्बराचार्य रत्नमण्डनगणि-कृत सुकृतसागर नामक ग्रन्थके—'पेथड़ तीर्थयात्राद्वय प्रबन्ध'में जो कुछ लिखा है उसका सारांश यह है कि—"सुप्रसिद्ध दानी पेथड़शाह शत्रुंजयकी यात्रा करके संघसहित गिरिनारमें पहुँचे। उनके पहले वहाँ दिगम्बर संघ आया हुआ था। उस संघका स्वामी पूर्ण (चन्द्र) नामका अग्रवालवंशी धनिक था। वह देहलीका रहनेवाला था। उसे 'अलाउद्दीनशाखीन मान्य' विशेषण दिया है जिससे मालूम होता है कि वह कोई राजमान्य पुरुष था। उसने कहा कि पर्वतपर पहले हमारा संघ चढ़ेगा; क्योंकि एक तो हम लोग पहले आये हैं और दूसरे यह तीर्थ भी हमारा है। यदि यह तीर्थ तुम्हारा है, तो इसका सबूत पेश करो। यदि भगवान नेमिनाथकी प्रतिमापर अंचलिका और कटिसूत्र प्रकट हो जाय, तो हम इसे तुम्हारा तीर्थ मान लेंगे। भगवान भव्य जनोंके दिये हुए आभरण सहन नहीं कर सकते, इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह तीर्थ हमारा है। इसपर श्वेताम्बरीय पेथड़ शाह बोले कि भगवान् आभरणादि सहन नहीं कर सकते, इसका कारण यह है कि उनकी कीर्ति १२ योजन तक फैली हुई है। आमके वृक्षपर तोरण-की और लंकामें लहरोंकी चाह नहीं होती। जिस तरह फलोधी (मारवाड़)में प्रति-माधिष्ठित देव आभूषणोपहारक हैं, उसी तरह यहाँ भी हैं। यदि यह तीर्थ तुम्हारा है, तो शैवोंका भी हो सकता है; क्योंकि यह पर्वत लिंगाकार है और गिरिवारि-धारक है। इस तरह वादविवाद हो रहा था कि कुछ वृद्धजनोंने आकर कहा,—इस झगड़ेको छोड़ दो और यात्राको चलकर वहाँ इन्द्रमाला (फूलमाल) लेते समय इसका निर्णय कर लेना। उस मालाको जो सबसे ज्यादा धन देकर ले सकेगा, उसीका यह तीर्थ सिद्ध हो जायगा। निदान दोनों संघ पर्वतपर गये और दोनों-ने अभिषेक, पूजन, ध्वजारोपण, नृत्य, स्तुत्यादि कृत्य किये। जब इन्द्रमालाका समय आया तब श्वेताम्बर भगवानके दाहिने ओर और दिगम्बर बाईं ओर बैठे। इसीसे निश्चय हो गया कि कौन हारेगा और कौन जीतेगा! इन्द्रमालाकी बोली होने लगी। परस्पर बढ़ते बढ़ते अन्तमें श्वेताम्बरोंने ५६ घड़ी सोना देकर माला लेनेका प्रस्ताव किया। दिगम्बरी अभी तक तो बराबर बढ़े जाते थे; परन्तु अब वे घबराये और सलाह करने लगे। लोगोंने संघपतिसे कहा—

लुण्ठितैरिव भूत्वा च फलं किंतीर्थवालने।
इमं नहि समादाय शैलेशं यास्यते गृहे॥

अर्थात् इस तरह लुटकर तीर्थ लेनेसे क्या लाभ होगा? क्या इस पर्वतराजको उठाकर घर ले चलना है? अन्तमें पूर्ण-चन्द्रजीने कह दिया कि आप ही माला पहन लीजिए। इससे दिगम्बरी मुरझा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गये और अपनासा मुँह लिये यात्रा करके नीचे उतर गये।"

यह कथा यद्यपि श्वेताम्बरियोंकी उदारता और गिरिनारपर श्वेताम्बराधिकार सिद्ध करनेके मुख्य अभिप्रायसे लिखी गई है, तो भी इसमें बहुत कुछ ऐतिहासिक सत्य जान पड़ता है; और इससे यह बात अनायास ही सिद्ध हो जाती है कि उस समय दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों एक ही मन्दिरमें उपासना करते थे और इन्द्रमालाकी बोली दोनोंके एकत्र समूहमें बोली जाती थी। इसके सिवा यह भी मालूम होता है कि उस समय गिरनारकी मूलनायक नेमिनाथकी प्रतिमा आभूषणोंसे सुसज्जित और कटिसूत्र तथा अंचलिकासे भी लांछित नहीं थी। इसी तरह उदाहरणके तौर पर जो फलोधी तीर्थकी प्रतिमाओंके विषयमें कहा है कि वहाँका प्रतिमाधिष्ठित देव भूषणापहारक है, सो जान पड़ता है कि वहाँ भी उस समय प्रतिमाओंको आभूषणादि नहीं पहनाये जाते थे। वीतराग प्रतिमाओंकी ये सब विडम्बनाएँ बहुत पीछेकी गई हैं।

८—श्रीरत्नमन्दिरगणिकृत उपदेश-तरंगिणी (पृ० २४८) में लिखा है कि—"सुराष्ट्रायाँ गोमण्डलग्रामवास्तव्यः सप्तपुत्रः सप्तशतसुभटः १३ शतशकटसंघः १३ कोटिस्वर्णपतिः सं० धाराकः श्रीशत्रुंजय यात्रां कृत्वा ५० वर्षावधि दिगम्बराधिष्ठित रैवतयात्रावसरे खङ्गारदुर्गपसैन्यैः सह युद्धे ७ पुत्र ७ सुभटक्षये श्रीवप्पभट्टिप्रतिबोधितं गोपगिरौ श्रीआमभूपतिं ज्ञात्वा तस्याऽऽमनृपस्य सूरिपार्श्वे व्याख्यानोपविष्टाष्टश्राद्धैः समं सं० धाराकः समागतः। तेन दिगम्बरगृहीत तीर्थस्वरूपं कथितम्। गुरुभिस्तन्महिमोक्तौ आमनृपेण गिरिनारनेमिवन्दनं विना भोजनाभिग्रहो गृहीतस्ततः संघश्चचाल। १ लक्षं पौष्टिकानाम् एकलक्षं तुरंगमाणाम् ७शतानि गजानाम्, विंशतिसहस्राणि श्रावककुलानाम्, ३२ उपवासैः स्तम्भतीर्थे प्राप्तः। राज्ञः शरीरं खिन्नम्। गुरुभिराम्बिकां प्रत्यक्षीकृत्य अपापमठात् प्रतिमैका आनीता। नृपाभिग्रहो मुत्कलोजातः। मासमेकं दिगम्बरैः सह वादः, पश्चादम्बिकया 'उज्जित सैलसिहरे' ति गाथया विवादो भग्नः, तीर्थं लात्वा दिगम्बरश्वेताम्बरजिनार्चानां नग्नावस्थाञ्चलिकाकरणेन विभेदः कृतः। इति यात्रोपदेशः।" इसका अभिप्राय यह है कि सुराष्ट्र देशके गोमण्डल नामक गाँवके निवासी धाराक नामके संघपति थे। उनके ७ पुत्र, ७०० योद्धा, १३०० गाड़ियाँ और १३ करोड़ अशर्फियाँ थीं। वे शत्रुंजयकी यात्रा करके जब गिरनार तीर्थकी यात्राको गये जो कि ५० वर्षसे दिगम्बरोंके अधिकारमें था, तब वहाँ उन्हें खङ्गार नामक किलेदारसे लड़ना पड़ा और उसमें उनके सातों पुत्र और सारे योद्धा मारे गये। उसी समय जब उन्होंने सुना कि गोपगिरि अर्थात् ग्वालियरके राजा आम हैं और उन्हें वप्पभट्टि नामक श्वेताम्बराचार्यने प्रतिबोधित कर रक्खा है, तब वे ग्वालियर आये। उस समय वप्पभट्टिका व्याख्यान हो रहा था। राजा बैठे थे और ८ श्रावक थे। धाराकने दिगम्बरगृहीत गिरनार तीर्थकी हालत सुनाई। गुरुने तीर्थकी महिमाका वर्णन किया। इस पर आम राजा प्रतिज्ञा कर बैठे कि गिरनारके नेमिनाथकी वन्दना किये बिना मैं भोजन ग्रहण नहीं करूँगा। १००० श्रावकोंने भी यही प्रतिज्ञा की। तब राजा एक बड़े भारी संघके साथ चल पड़े। ३२ उपवास करके स्तंभतीर्थ अर्थात् खंभातमें पहुँचे। राजाका शरीर बहुत खिन्न देखकर गुरुने अम्बिकाको बुलाया और उसके द्वारा अपापमठ (?) से एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमा मँगवा ली। उसके दर्शन करके राजा प्रतिज्ञामुक्त हो गये! इसके बाद एक महीने तक दिगम्बरियोंसे विवाद हुआ और अन्तमें अम्बिकाने 'उज्जितसेल सिहरे' आदि गाथाएँ कहकर विवादकी समाप्ति कर दी। (इन गाथाओंमें यह कहा गया है कि जो स्त्रियोंकी मुक्ति मानता है, वही सच्चा जैन मार्ग है और उसीका यह तीर्थ है) इस तरह तीर्थ लेकर, दिगम्बर श्वेताम्बरोंकी प्रतिमाओंमें नग्नावस्था और अञ्चलिकाका भेद कर दिया।

उक्त अवतरणसे दो बातें मालूम होती हैं। एक तो यह कि पहले दोनोंकी प्रतिमाओंमें कोई भेद नहीं था; और दूसरी यह कि इस घटनाके पहले गिरनार पर ५० वर्ष तक दिगम्बरियोंका अधिकार था।

८—इसी उपदेशतरङ्गिणी (पृष्ठ २४७) में वस्तुपाल मंत्रीके सँघका वर्णन है जो उन्होंने सं० १२८५ में निकाला था। उसमें २४ दन्तमय देवालय, १२० काष्ठ देवालय, ५५०० गाड़ियाँ, १८०० डोलियाँ, ७०० सुखासन, ५०० पालकियाँ, ७०० आचार्य, २००० श्वेताम्बर साधु, ११०० दिगम्बर, १६०० श्रीकरी, ४००० घोड़े, २००० ऊँट और ७ लाख मनुष्य थे! यद्यपि यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है, तो भी इससे यह मालूम होता है कि उस समय तीर्थ-यात्रा, पूजनार्चा आदि कार्य्योंमें दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंमें इतनी विभिन्नता नहीं थी, जितनी कि अब है; और इसी कारण इस संघमें श्वेताम्बरियोंके साथ ११०० दिगम्बर भी गये थे। दोनोंमें आजकलके समान वैरभाव नहीं होगा। और दिगम्बर श्वेताम्बरोंकी मूर्तियोंमें यदि अन्तर होता तो दिगम्बरियोंके लिए वस्तुपालने दिगम्बर देवालयोंकी भी व्यवस्था की होती और उनकी भी संख्या दी होती।

१०—जान पड़ता है, गिरिनार पर्वतपर दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंके बीच वह विवाद कभी न कभी अवश्य हुआ है जिसका उल्लेख धर्मसागर उपाध्यायने किया है। यह कोई ऐतिहासिक घटना अवश्य है; क्योंकि इसका उल्लेख दिगम्बर-साहित्यमें भी मिलता है। नन्दिसंघकी गुर्वावलीमें लिखा है:—

पद्मनन्दी गुरुर्जातो* बलात्कारगणाग्रणी।
पाषाणघटितायेन वादिता श्रीसरस्वती॥३६॥
उज्जयन्तगिरौ तेन गच्छः सारस्वतोभवेत्।
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्मनन्दिने३७

और भी कई जगह † इस घटनाका जिक्र है कि गिरनारपर दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंका शास्त्रार्थ हुआ था और उसमें सरस्वतीकी मूर्तिमेंसे ये शब्द निकलनेसे कि सत्य मार्ग दिगम्बरोंका है, श्वेताम्बर पराजित हो गये थे। इस सरस्वतीकी मूर्तिको वाचाल करनेवाले पद्मनन्दि भट्टारक थे जिनका समय उक्त गुर्वावलीमें विक्रम संवत् १३८५ से १४५० लिखा है। इनके शिष्य शुभचन्द्र और प्रशिष्य जिनचन्द्र थे। श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें यही घटना इस रूपमें वर्णित है कि अम्बिकादेवीने श्वेताम्बरोंकी विजय यह

* आचार्य कुन्दकुन्दका भी एक नाम पद्मनन्दि है; अतएव पीछेके लेखकोंने इस शास्त्रार्थ और विजयका मुकुट कुन्दकुन्दको भी पहना दिया है; परन्तु यह बड़ा भारी भ्रम है। ये पद्मनन्दि १४वीं शताब्दिके एक भट्टारक हैं।

† कविवर वृन्दावनजीने लिखा है:—

संघसहित श्रीकुन्द कुन्द (पद्मनन्दि?)
गुरु, वन्दन हेत गए गिरनार।
वाद पर्यौ तहँ संशयमति सों,
साखी बदी अंबिकाकार।
'सत्यपन्थ निर्ग्रंथ दिगम्बर,
कही सुरी तहँ प्रगट पुकार।
सो गुरुदेव बसौ उर मेरे,
विघन हरन मंगल करतार।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहकर कराई थी कि जिस मार्गमें स्त्री-को मोक्ष माना है वही सच्चा है। जीत चाहे किसीकी हुई हो-क्योंकि शास्त्रार्थोंमें तो हम आजकल भी यही देखते हैं कि दोनोंही पक्षवाले अपनी अपनी जीतका डंका पीटा करते हैं—परन्तु यह निश्चित है कि उक्त विवाद हुआ था और उसी समयसे दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंमें विद्वेषका यह बीज विशेष रूपसे बोया गया था जिसने आगे चलकर बड़े बड़े विषमय फल उत्पन्न किये। पिछले दिगम्बर-श्वेताम्बर साहित्यका परिश्रमपूर्वक परिशीलन करनेसे इस घटनाका निश्चित समय भी मालूम हो सकता है; और हमारा अनुमान है कि दोनों ओरके प्रमाणोंसे वह समय भी एक ही ठहरेगा। *

११—मुग़ल बादशाह अकबरके समयमें हीरविजय सूरि नामके एक सुप्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हुए हैं। अकबर उन्हें गुरुवत् मानता था। संस्कृत और गुजरातीमें उनके सम्बन्धमें बहुतसे ग्रन्थ लिखे गये हैं। इन ग्रन्थोंमें लिखा है कि "हीरविजयजीने मथुरासे लौटते हुए गोपाचल (ग्वालियर) की बावन-गजी भव्याकृति मूर्तिके दर्शन किये।" और यह मूर्ति दिगम्बर सम्प्रदायकी है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इससे मालूम होता है कि बादशाह अकबरके समय तक भी दोनों सम्प्रदायोंमें मूर्ति-सम्बन्धी विरोध नहीं था। उस समय श्वेताम्बर सम्प्रदायके आचार्य तक नग्न मूर्तियोंके दर्शन किया करते थे।

१२—ऐसा मालूम होता है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर प्रतिमाओंमें भेद हो जानेके बाद भी बहुत समय तक दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंमें मित्रता बनी रही है। बहुत समय तक इस खयालके लोग दोनों सम्प्रदायोंमें बने रहे हैं कि एक दूसरेके धर्मकार्योंमें बाधा नहीं डालनी चाहिए। दोनोंको अपने अपने विश्वासके अनुसार पूजा-अर्चा करने देनाही सज्जनता है। अनुसन्धान करनेसे इसके अनेक प्रमाण मिल सकते हैं।

शत्रुंजय और आबूके पहाड़ोंमें श्वेताम्बर मन्दिरोंके बीचों बीच दिगम्बर मन्दिरोंका अस्तित्व अब भी इस बातकी साक्षी दे रहा है कि उस समयके वैभवसम्पन्न और समर्थ श्वेताम्बरी भी यह नहीं चाहते थे कि इन तीर्थोंपर हमही हम रहें, दिगम्बरी नहीं आने पावें।

२—गन्धार (भरोंच) एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था। वहाँ एक पुराना दिगम्बर मन्दिर था। जब वह गिर गया और उसकी जगह नया श्वेताम्बर मन्दिर बनवाया गया, तब वहाँके श्वेताम्बर भाइयोंने दिगम्बर प्रतिमाओंको एक जुदा देवकुलिका (देहली) में स्थापित कर दिया। यह देवकुलिका अब भी मौजूद है।

३—बिहारमें अबसे १२-१३ वर्ष पहले एक जैन मन्दिर हमने स्वयं देखा है जिसके अधिकारी श्वेताम्बर हैं। उसमें एक ओर दिगम्बरी वेदिका भी है और उसमें जो मूर्तियाँ है, उनका दर्शन पूजन दिगम्बरी भाई किया करते हैं।

४—ओरिएण्टल कालेज लाहौरके प्रो० बनारसीदास जी एम० ए० से मालूम हुआ है कि लाहौरके जैन मन्दिरमें दोनों सम्प्रदायोंकी मूर्तियाँ दो पृथक् पृथक्

* पूर्वोक्त पद्मनन्दिकी ही शिष्य-परम्परामें एक पद्मनन्दि भट्टारक और हुए हैं जिन्होंने शत्रुंजय पर्वतके दिगम्बर मन्दिरकी प्रतिष्ठा सम्वत् १६८६ में कराई थी। देखो जैनमित्र भाग २२ अंक १५।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेदिकाओंमें थीं। अभी ५-७ वर्ष पहले दोनोंके बीचमें एक दीवार बनवा दी गई है।

५--पूना शहरमें एकही अहातेके भीतर दिगम्बर और श्वेताम्बर मन्दिर अब तक हैं।

६--ग्वालियर राज्यके शिवपुरकलाँ नामक स्थानमें एक दिगम्बर मन्दिर ऐसा है जिसमें ७-८ श्वेताम्बर मूर्तियाँ हैं; और एक श्वेताम्बर मन्दिर ऐसा है जिसमें ७-८ दिगम्बरी मूर्तियाँ हैं। पहले दोनों मन्दिरोंमें दोनों सम्प्रदायके लोग जाते थे; परन्तु अब केवल भादों सुदी १० को धूप खेनेके लिए जाया करते हैं। तलाश करनेसे इस तरहके और भी अनेक प्रमाण मिल सकते हैं। इनसे मालूम होता है कि पहलेके लोगोंमें आजकलके समान धर्मयुद्धोंकी प्रवृत्ति नहीं थी; बल्कि दोनों हिल मिलकर रहना चाहते थे।

१३--अकसर दिगम्बरी भाइयोंकी ओरसे यह आक्षेप किया जाता है कि श्वेताम्बरी भाई दिगम्बरी मन्दिरों और प्रतिमाओंपर अधिकार कर लिया करते हैं; और यही आक्षेप श्वेताम्बरियोंकी ओरसे दिगम्बरियोंपर किया जाता है। यह आक्षेप बहुत अंशोंमें सच्चा है; परन्तु इसके पात्र दोनोंही सम्प्रदायवाले हैं। इस विषयमें कोई सम्प्रदाय निर्दोष नहीं ठहर सकता। सम्प्रदाय-मोह चीज ही ऐसी है कि वह भिन्न सम्प्रदायवालोंके साथ उदारताका व्यवहार करनेमें संकुचित हुए बिना नहीं रह सकती। इसके सम्बन्धमें भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। क--श्रद्धेय मुनि जिनविजयजीसे मालूम हुआ कि सुप्रसिद्ध तीर्थ रिखबदेवका मुख्य मन्दिर दिगम्बर सम्प्रदायका है; परन्तु उसपर अधिकार श्वेताम्बरी भाइयोंका है। ख--रोशन मुहल्ला आगरेके सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर मन्दिर (चिन्तामणि पार्श्वनाथ) की मूलनायककी मूर्ति दिगम्बर सम्प्रदायकी है। (देखो जैनशासन वर्ष १)। ग--बैराट (जयपुर) का पार्श्वनाथका मन्दिर वास्तवमें श्वेताम्बर सम्प्रदायका है; परन्तु इस समय वह एक खण्डेलवाल श्रावकके अधिकारमें है। डा० देवदत्त रामकृष्ण भाण्डारकर एम० ए०ने इस मन्दिरका निरीक्षण करके वेस्टर्न सर्किलके आर्किआलोजिकल सर्वेकी सन् १९१० की रिपोर्टमें एक विस्तृत लेख लिखा है। यह मन्दिर शक सं० १५०९में बादशाह अकबरके समयमें बना है। अकबरने शकमणगोत्रीय इन्द्रराज श्रीमालीको बैराटका अधिकारी बनाया था। इसी इन्द्रराजका बनवाया हुआ यह महोदय प्रसाद या इन्द्रविहार नामका मन्दिर है। देवालयके अहातेकी दीवारमें इस विषयका विस्तृत शिलालेख लगा हुआ है। हीरविजयसूरिके शिष्य कल्याणविजयके हाथसे इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा हुई थी और इस काममें इन्द्रराजने ४० हज़ार रुपया खर्च किया था।

१४--जब कोई मुझसे पूछता है कि अमुक तीर्थपर वास्तविक अधिकार किसका है, तो मैं कह दिया करता हूँ कि दोनोंका है। दोनोंमेंसे चाहे जो पीछेका हो, पर उसका अधिकार पहलेवालेसे कम नहीं ठहराया जा सकता। बल्कि उसपर तो ऐसे जैनेतर लोगोंका भी अधिकार है जो जिनदेवपर श्रद्धा रखते हैं और उनका भक्तिभावसे पूजन वन्दन करते हैं। जब दोनोंही सम्प्रदायवाले जिनदेवों और सिद्धोंके उपासक हैं और उपासना करना किसीकी जमींदारीका कोई खेत जोतना या फसल काट लेना नहीं है, तब उनका अधिकार कम या ज्यादा ठहर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राया ही कैसे जा सकता है? कुछ लोग पुराने दस्तावेज और तमस्सुक पेश करके अपना अधिकार सिद्ध करनेका प्रयत्न किया करते हैं; और सम्भव है; उनसे उनका अधिकार सिद्ध भी होता हो, परन्तु क्या उनसे यह प्रश्न नहीं किया जा सकता कि उन दस्तावेजोंसे पहले भी तो ये दोनों सम्प्रदाय थे। तब क्या इनसे पहलेके प्रमाणपत्रोंका तुम्हारे प्रतिपक्षीके पास होना सम्भव नहीं है? और यह सिद्ध करना तो बाकी ही रह जायगा कि उनके लिखनेवाले शासकोंको वैसे किसी सार्वजनिक धर्मस्थानके सम्बन्धमें दस्तावेज लिख देनेका अधिकार था या नहीं। यह संभव और स्वाभाविक है कि किसी समय पर किसी सम्प्रदायवालोंका ऐहिक वैभव और प्रभाव बढ़ गया हो और उस समय उनके समीपके तीर्थका प्रबन्ध उनके हाथमें आ गया हो और किसी समय उनके बदले दूसरोंके पास चला गया हो। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि उस तीर्थका वास्तविक अधिकारी अमुक सम्प्रदाय ही था। ऊपर उपदेश-तरंगिणी ग्रन्थका जो अवतरण दिया है, उससे मालूम होता है कि संघवी धाराकके समयमें गिरनार तीर्थ पर ५० वर्षसे दिगम्बरियोंका अधिकार था और पीछे आम राजाकी कृपासे वह अधिकार श्वेताम्बरियोंके हाथमें चला गया होगा। इसी तरहका एक उल्लेख तारंगा सिद्धक्षेत्रके सम्बन्धमें कुमारपाल प्रतिबोध नामक श्वेताम्बर ग्रन्थमें मिलता है। यह ग्रन्थ सोमप्रभ सूरिका बनाया हुआ है और 'गायकाड़ ओरिएण्टल सीरीज' में हालमें ही प्रकाशित हुआ है। इसकी रचनाका समय विक्रम संवत् १२४१ है। इसमें आर्य खपुटाचार्यकी कथामें लिखा है कि—

ताराइ बुद्धदेवीइ मंदिरं,
तेण कारियं पुव्वं।
आसन्न गिरम्मि तओ,
भन्नइ ताराडरंति इभो॥
तेणेव तत्थ पच्छा,
भवणं सिद्धाइयाइ कारवियं।
तं पुण कालवसेण,
दियंबरेहिं परिग्गहियं॥
तस्थ ममाएसेणं,
अजिय जिणिंदस्स मंदिरं तुगं।
दंडाहिव अभएणं
जसदेव सुएण निम्मवियं॥

इन गाथाओंका अभिप्राय है कि—"पहले उसने तारा*नामकी बौद्ध देवीका मंदिर पर्वतके समीप बनवाया; इस कारण इस तीर्थको तारापुर कहते हैं। इसके बाद उसीने फिर वहीं पर सिद्धायिका (जैन-देवी) का मन्दिर बनवाया। परन्तु काल-वशसे उसे दिगम्बरियोंने ले लिया। अब वहीं पर (कुमारपाल राजा कहते हैं) मेरे आदेशसे उस देवके पुत्र दंडाधिप अभय-की देखरेखमें अजित † जिनेन्द्रका ऊँचा मन्दिर बनवाया गया है।" इससे मालूम होता है कि कुमारपाल राजाके समय तक समूचे तारंगा तीर्थ पर या कमसे कम सिद्धायिका देवीके मन्दिरपर दिगम्बरियोंका अधिकार था।

तारंगा पर्वत पर कोटिशिला पर एक

* तारंगा पर्वतकी तलैटीसे उत्तरकी ओर लगभग डेढ़ मीलकी दूरी पर तारादेवीकी मूर्ति अब भी मौजूद है और उस पर बौद्धोंकी एक प्रसिद्ध गाथा लिखी हुई है।

† कुमारपाल महाराजका यह विशाल मन्दिर अब भी वर्तमान है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेदी है। उसकी एक प्रतिमा पर अब भी संवत् ११९० की वैशाख सुदी ६ का, सिद्धराज जयसिंहके समयका लेख है * जिससे मालूम होता है कि उस समय अर्थात् कुमारपाल महाराजके मन्दिर-निर्माणके पहले, वहाँ पर दिगम्बरियोंके मन्दिर और प्रतिमाएँ थीं और कुमारपाल प्रतिबोधके कथनानुसार संभव है कि पर्वत पर दिगम्बरियोंका ही अधिकार हो। इसी तरह पावागढ़ सिद्धक्षेत्र पर इस समय सम्पूर्ण अधिकार दिगम्बरियोंका है; परन्तु पर्वतके ऊपर कई ऐसे मन्दिरोंके खण्डहर पड़े हुए हैं जो श्वेताम्बर सम्प्रदायके हैं और जिनसे मालूम होता है कि वहाँ पर श्वेताम्बरी भाई भी जाते थे और उनके मन्दिर थे। कदम्बवंशी राजाओंके जो ताम्रपत्र † प्रकाशित हुए हैं, उनमेंसे दूसरे ताम्रपत्रमें श्वेताम्बर महाश्रमणसंघ और दिगम्बर महाश्रमणसंघके उपभोगके लिए कालवङ्ग नामक ग्रामके देनेका उल्लेख है। यह स्थान कर्नाटक प्रदेशमें धारवाड़ जिलेके आस पास कहीं पर है। अवश्य ही इस समय वहाँ पर कोई श्वेताम्बर संघका भी स्थान, तीर्थादि होगा। परन्तु बहुत समयसे उस ओर श्वेताम्बरी भाइयोंका एक तरहसे अभाव ही है, इस कारण उक्त स्थान या तो नष्टभ्रष्ट हो गया होगा या दिगम्बरियोंके अधिकारमें होगा।

आशा है कि पाठकगण उक्त प्रमाणोंसे दिगम्बर-श्वेताम्बरोंके झगड़ेकी असलियतको बहुत कुछ समझ जायँगे। इस समय जब कि दोनों सम्प्रदायके समझदार लोग इन झगड़ोंसे ऊब गये हैं और चाहते हैं कि किसी तरह इनका अन्त हो जाय, इस लेखका बहुत कुछ उपयोग हो सकता है।

परम वीतराग भगवानका शान्तिप्रद शासन दोनों पक्षके मुखियोंको सद्बुद्धि दे कि वे इस जैन धर्मको कलंकित करनेवाले व्यवसायसे शीघ्र ही पराङ्मुख हो जायँ।

वीतराग मार्गकी रक्षा तीर्थों या मन्दिरोंको अपनी अपनी सम्पत्ति बना लेनेसे नहीं होगी, किन्तु उन तीर्थों और मन्दिरोंमेंसे घर घर और घट घटमें शान्ति, दया, क्षमाके सन्देश पहुँचानेसे होगी। इस बातको हमें घड़ी भरके लिए भी न भूलना चाहिए।

हाथीगुफाका शिलालेख।

जैन सम्राट् खारवेलका इतिहास।

[लेखक—कुमार देवेंद्रप्रसाद, आरा।]

(गतांकसे आगे।)

हाथीगुफाका वह मूल शिलालेख जिसे श्रीयुत के० पी० जायसवालने पर्वत परसे पुनः जाँच द्वारा संशोधित करके 'दि जर्नल आफ् दि बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटीके, दिसम्बर सन् १९१८ के अंकमें, संस्कृत छायानुवाद सहित प्रकाशित कराया था और जिसका परिचय गतांकमें दिया गया है, अपने उस संशोधित रूपमें, संस्कृतानुवाद सहित, निम्न प्रकार है। इसमें जो अक्षर मोटे (ब्लैक) टाइपमें छापे गये हैं वे इस बातको सूचित करनेके लिए हैं कि शिलालेखमें उन खास खास शब्दोंसे पहले उन्हें गौरवके साथ उच्चारण करनेके वास्ते, कुछ स्थान ख़ाली छोड़ा हुआ है।

* देखो जैनमित्र भाग २२ अंक १२।

† इन ताम्रपत्रोंका विवरण देखो जैनहितैषी भाग १४ अंक ७–८ में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ प्राकृतम् ॥

पहली पंक्ति

नमो अरहंतानं [।] नमो सवसिधानं [।] ऐरेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेतराजवस-वधनेन पसथसुभलखनेन चतुरंतल थुन-गुनोपहितेन कलिंगाधिपतिना सिरि खारवेलेन ।

दूसरी पंक्ति

पन्दरसवसानि सिरि-कडार-सरीरवता कीडिता कुमारकीडिका [।] ततो लेखरूपगणना-ववहार-विधिविसारदेन सववविजावदातेन नववसानि योवरजं पसासितं [।] संपुण-चतुवीसति-वसो तदानि वधमानसेसयोवे(=व) नाभिविजयो ततिये

तीसरी पंक्ति

कलिंगराजवंसे पुरिसयुगे महारजाभिसेचनं पापुनाति [।] अभिसितमतो च पधमे वसे वात-विहत-गोपुर-पाकार-निवेसनं पटिसंखारयति [।] कलिंनगरि' [ि] ख-बीरं इसि-तालं तडाग-पाडियो च बन्धापयति [।] सबुयान-पतिसंठपनं च

चौथी पंक्ति

कारयति [।] पनतीसाहि सतसहसेहि पकतियो च रंजयति [।] दुतिये च वसे अचितयिता सातकर्णि पछिमदिसं हय-गज-नर-रध-बहुलं दंडं पथापयति [।] कण्हबेनां गताय च सेनाय वितापति * मुसिकनगरं [।] ततिये पुन वसे

॥ संस्कृतम् ॥

नमोऽर्हद्भ्यः [।] नमःसर्वसिद्धेभ्यः [।] ऐलेन महाराजेन महामेघवाहनेन चैत्रराजवंशवर्धनेन प्रशस्तशुभलक्षणेन चतुरंतरस्थूणगुणोपहितेन कलिङ्गाधिपतिना श्रीखारवेलेन ।

पञ्चदशवर्षाणि श्री-कडारशरीर-वता क्रीडिताः कुमारक्रीडाः [।] ततो लेखरूपगणनाव्यवहारविधिविशारदेन सर्वविद्यावदातेन नववर्षाणि यौवराज्यं प्रशासितम् [।] सम्पूर्णचतुर्विंशतिवर्षस्तदानीं वर्धमानशेषयौवनाभिविजयस्तृतीये

कलिङ्गराजवंशे पुरुष-युगाय* महाराज्याभिषेचनं प्राप्नोति [।] अभिषिक्तमात्रश्च प्रथमे वर्षे वातविहतं गोपुर-प्राकार-निवेशनं प्रतिसंस्कारयति [।] कलिङ्गनगर्याम् उत्तिका-बिल्लं इषितल्लं तडागपालीश्च बन्धयति [।] सर्वोद्यानप्रतिसंस्थापनञ्च

कारयति [।] पञ्चत्रिंशच्छतसहस्रैः† प्रकृतीश्च रञ्जयति [।] द्वितीयेच वर्षे अचिन्तयित्वा सातकर्णिं पश्चिमदेशं‡ हय-गज-नर-रथ-बहुलं दण्डं प्रस्थापयति [।] कृष्णवेणां गतया च सेनया वितापयति मूषिकनगरम् [।] तृतीये पुनर्वर्षे

* वितापितं इति वा ।

* पुरिसयुगे इति निमित्ते सप्तमी । कम्मकरणनिमित्तत्थेसु सत्तमी इति काच्चायनः (३. १. ४०)

† पञ्चत्रिंशच्छत-सहस्रैः प्रकृतीः परिच्छिद्य परिगणय्य इत्येतदर्थे तृतीया ।

‡ दिक्शब्दः पालीप्राकृते विदेशार्थोऽपि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ प्राकृतम् ॥

पाँचवीं पंक्ति.

गंधव-वेदबुधो दंत-नत-गीत-वादितसंदसनाहि उसव-समाज-कारापनाहि च कीडापयति नगरिं [।] तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहत-पुवं कलिंगपुवराजनिवेसितं.....वितध-मकूटे स-बिलम' ढिते च निखित-छत-

छठी पंक्ति

भिंगारे हित-रतन-सापतेये सव-रठिक भोजके पादे वंदापयति [।] पंचमे च दानी वसे नंदराज--ति-वससत-ओघाटितं तनसुलिय-वाटा पनाडिं नगरं पवेस [य] ति [।] सो [पि च वसे] छडभ' भिसितो च राजसुय [ँ] सन्दसयंतो सव-कर-वणं

सातवीं पंक्ति

अनुगह-अनेकानि सतसहसानि विसजति पोरं जानपदं [।] सतमं च वसं पसासतो वजिरघरवि धुसि ति घरिनी समतुक-पद-पुंना सकुमार [र]..... .....[।] अठमे च वसे महतिसेनाय मह [त-भित्ति]-गोरधगिरिं

आठवीं पंक्ति

घातापयिता राजगहं उपपीडापयति [।] एतिना च कंम' पदान-पनादेन संवित सेन-वाहिनीं विपमुंचितुं मधुरां अपयातो येव नरिदो [नाम]..... .....[मो ?] यछति [विछ].... ....पलवभरे

नवीं पंक्ति

कलपरुखे हय-गज-रध-सह-यंते सव-घरावास-परिवसने स-अगिणठिये [।] सवगहनं च कारयितुं बम्हणानं जाति-पंतिं परिहारं ददाति- [।] अरहत.....व .....न.....गिय

॥संस्कृतम् ॥

गन्धर्ववेदबुधो दम्प*-नृत्त-गीत-वादित्रसन्दर्शनैरुत्सव-समाज-कारणैश्च क्रीडयतिनगरीम् [।] तथा चतुर्थे वर्षे विद्याधराधिवासम् अहतपूर्वं कलिङ्गपूर्वराजनिवेशितं.....वितथ-मकुटान् सार्धितबिल्मांश्च निक्षिप्त-छत्र-

भृङ्गारान् हृत-रत्न-स्वापतेयान् सर्वराष्ट्रिक भोजकान् पादावभिवादयते [।] पञ्चमे चेदानीं वर्षे नन्दराजेन त्रि-शत-वर्षीयाम् अवघट्टितां तनसुलियवाटात् प्रणालीं नगरं प्रवेशयति [।] सो [ऽपिच वर्षे] षष्ठेऽभिषिक्तश्च राजसूयं सन्दर्शयन् सर्वकर-पणम्

अनुग्रहाननेकान् शतसहस्रं विसृजति पौराय जानपदाय [।] सप्तमं च वर्षं प्रशासतो वज्रगृहवती धृष्टिरिति गृहिणी सन्मातृकपद-पूर्णा सुकुमार [र] ..... [।] अष्टमे च वर्षे महत्या सेनया महा-[भित्ति] गोरथगिरिं

घातयित्वा राजगृहमुपपीडयति [।] एतेन च कर्मावदान-प्रणादेन संवीतां सैन्यवाहिनीं विप्रमोक्तुं मथुरामपयात एव नरेन्द्रो [नाम].....[मो?]† यच्छति [विछ].....पल्लवभृतानि

कल्पवृक्षान् हयगजरथान् सयन्तॄन् सर्वगृहावास-परिवसनानि साग्निष्ठिकानि [।] सर्वग्रहणं च कारयितुं ब्राह्मणानां जातिपङ्क्त्यै परिहारं ददाति [।] अर्हत्..... .....व.....न.....गिया (?)

* दम्प = दम्पति ?

† नवमे वर्षे इत्येतस्य मूलपाठो नष्टोन्तर्हिताक्षरेषु ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ प्राकृतम् ॥

दसवीं पंक्ति

...[क]. ि [मा] नेहि रा [ज] संनिवासं महाविजयं पासादं कारापयति अठतिसाय सत-सहसेहि [।] दसमे च वसे महधीत' भिसमयो भरध-वस-पथानं महिजयनं...ति कारापयति.....[निरितय] उयातानं च मणि-रतना [नि] उपलभते [।]

ग्यारहवीं पंक्ति

.....मंडे च पुव-राजनिवेसित-पीथुडग-द [ल] भ-नंगले नेकासयति जनपद-भावनं च तेरस-वस-सत-केतुभद-तित' मर-देह-संघातं [।] वार-समे च वसे ..

.....सेहि वितासयति उतरापथ-राजानो

बारहवीं पंक्ति

.....मगधानं च विपुलं भयं जनेतो हथिसु गंगाय पाययति [।] मागधं च राजानं वहसतिमितं*पादे वंदापति [।] नंदराज-नीतं च कालिंग-जिन-संनिवेसं.....गहरतनान पडिहारेहि अंगमागध-वसुं च नेयाति [।]

तेरहवीं पंक्ति

.....त जठर-लिखिल-बरानि सिहिरानि नीवेसयति सत-विसिकनं परिहारेन [।] अभुतमछरियं च हथि-नावन परीपुरं उ [प-] देणह हय-हथी-रतना-[मा] निकं पंडराजा एदानि अनेकानि मुतमणिरतनानि अहरापयति इध सत-[स] [।]

चौदहवीं पंक्ति

.....सिनो वसीकरोति [।] तेरसमे च वसे सुपवत-विजयि-चके कुमारीपवते अरहिते य [।] प-खिम-व्यसंताहि

॥ संस्कृतम् ॥

...[क] [ि] मानैः (?) राजसन्निवासं महाविजयं प्रासादं कारयति अष्टात्रिंशता शत सहस्रैः [।] दशमे च वर्षे महधृताभिसमयो भारतवर्ष-प्रस्थानं महीजयनं...ति कारयति.....[निरित्या ?] उद्यातानां च मणि-रत्नानि उपलभते [।]

.....*.....मण्डे च पूर्वराजनिवेशिते पृथूदग्र-दलभ-लाङ्गले निष्कासयति जनपद-भावनञ्च त्रयोदश-शत-वर्षीयस्य केतुभद्रस्य तिक्तामर-देह-संघातम् [।] द्वादशे च वर्षे..... भिः विन्नासयति उत्तरापथराजान्

.....मगधानाञ्च विपुलम्भयं जनयन् हस्तिषु गङ्गायां प्राययति [।] मागधञ्च राजानं बृहस्पतिमित्रं पादावभिवादयते [।] नन्दराजनीतञ्च कालिङ्ग-जिन-सन्निवेशं.....गृहरत्नानां प्रतिहारैरङ्गमागध-वसूनि च नाययति [।]

.....त जठरोल्लिखितानि वराणि शिखराणि निवेशयति शत-वैशिकानां परिहारेण [।] अद्भुतमाश्चर्यञ्च हस्ति-नावां परिपूरम् उपदेयं हय-हस्तिरत्न-माणिक्यं पाण्ड्यराजात् इदानीमनेकानि मुक्तामणिरत्नानि आहारयति इह शत [शः] [।]

.....सिनो वशीकरोति [।] त्रयोदशे च वर्षे सुप्रवृत्त-विजयिचक्रे कुमारी पर्वते ऽर्हिते याप-क्षेम-व्यसदूभ्यः का-

* वहसतिमित्रं इति वा ।

* एकादशे वर्षे इत्येतस्य मूलपाठो नष्टो गलितशिलायाम् ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ प्राकृतम् ॥

काय्यनिसीदीयाय यापञावकेहि राजभितिनि चिनवतानि वोसासितानि [।] पूजानि कत-उवासा खारवेल-सिरिना जीवदेव-सिरि-कलपं राखिता [।]

पन्द्रहवीं पंक्ति

.....[ता] सु कतं समण-सुविहितानं (नुं?) च सात-दिसानं (नुं?) ञातानं तपस-इसिनं संघायनं (नुं?) [;] अरहत निसीदिया समीपे पभारे वराकर-समुथपिताहि अनेक-योजनाहिताहि..... सिलाहि सिंहपथ-राजिय * धुसिय निसयानि

सोलहवीं पंक्ति.

.....पटालिकोचतरे च वेडूरियगभे थंभे पतिठापयति [,] पानतरिया सतसहसेहि [।] मुरिय—कालं वोछिनं (नें?) च चोयठि-अगस-तिकंतरियं उपादायति [।] खेमराजा स वढराजा स भिखुराजा धमराजा पसंतो सुनंतो अनुभवंतो कलाणानि

सत्रहवीं पंक्ति

.....गुण—विसेस—कुसलो सव पासंड-पूजको सव-देवायतन-संकारकारको [अ]पति-हत-चकि-वाहिनिबलो चकधुर-गुतचको पवत-चको राजसिबस-कुल-विनिश्रितो महा-विजयो राजा खार-वेलसिरि

॥ संस्कृतम् ॥

यिकनिषीद्यां यापज्ञापकेभ्यः राज-भृतीश्रीर्णव्रताः व्यवशासिताः [।] पूजाः कृतोपासाः खारवेलेन श्रीमता श्रीजीवदेव-कल्पं रक्षिताः [।]

.....[ता] सु कृतं श्रमणेभ्यः * सुविहितेभ्यः शास्त्रदृग्भ्यः ज्ञातृभ्यः तपऋषिभ्यः संघायनम् [।] अर्हन्निषीद्याः समीपे प्राग्भारे वराकरसमुत्थापिताभिरनेकयोजनाहृताभिः.....शिलाभिः सिंहप्रस्थीयायै राज्यै धृष्ट्यै निःश्रयाणि

.....पाटालिकावचत्वरे च वैदूर्य्यगर्भान् स्तम्भान् प्रतिष्ठापयति [,] पञ्चसप्तत्या शतसहस्रैः [।] मुरिय-कालं व्यवच्छिन्नञ्च चतुःषष्ठ्याग्रशतिकान्तरीय-मुपादापयति † [।] क्षेमराजः स वर्द्धराजः स भिक्षुराजो धर्मराजः पश्यन् शृण्वन्ननुभवन् कल्याणानि

.....गुण—विशेष—कुशलः सर्वपाषण्डपूजकः सर्व-देवायतन-संस्कारकारकः [अ] प्रतिहत-चक्रि-वाहिनी-बलः चक्रधुर-गुप्तचक्रः प्रवृत्तचक्रो राजर्षिवंश-कुल-विनिःसृतो महाविजयो राजा खारवेलश्रीः

* रानिस वा इति हरननन्दनपाण्डेयाः ।

* श्रमणेषु वा ।

† दीङ् क्षये णिचि दापयति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिलालेखका हिन्दी अनुवाद।

पंक्ति १–अर्हतोंको नमस्कार। सर्व-सिद्धोंको नमस्कार। ऐल-महाराज महा-मेघवाहन, चैत्रराजवंशवर्धन, प्रशस्तशुभ-लक्षणसम्पन्न, अखिल-देश-स्तम्भ, कलि-ङ्गाधिपति श्रीखारवेलने।

पंक्ति २–पन्द्रह वर्ष तक, श्रीसम्पन्न और फुर्तीले (गन्दुमी) रंगवाले शरीरसे कुमार क्रीड़ाएँ कीं। बादमें लेख, रूप-गणना, व्यवहार-विधिमें उत्तम योग्यता प्राप्त करके और समस्त विद्याओंमें प्रवीण होकर उसने नौ वर्षोंतक युवराज-की भाँति शासन किया।

जब वह पूरा चौबीस वर्षका हो चुका तब उसने, जिसका शेष-यौवन विजयोंसे उत्तरोत्तर वृद्धिगत हुआ,–तृतीय

पंक्ति ३–कलिंगराजवंशमें, एक पुरुषयुगके लिए महाराज्याभिषेक पाया। अपने अभिषेकके **पहलेही वर्षमें** उसने वातविहत (तूफ़ानके बिगाड़े हुए) गोपुर (फाटक) प्राकार (चहारदीवारी) और भवनोंका जीर्णोद्धार कराया; कलिंग नगरीके फव्वारेके कुण्ड, इषितल (?) और तड़ागोंके बाँधोंको बँधवाया; समस्त उद्यानोंका प्रतिसंस्थापन कराया और पैंतीस लक्ष प्रजाको सन्तुष्ट किया।

पंक्ति ४–**दूसरे वर्षमें**, सातकर्णि-की चिन्ता न करके उसने पश्चिम देशको बहुतसे हाथी, घोड़ों, मनुष्यों और रथोंकी एक बड़ी सेना भेजी। कृष्णवेण नदी पर सेना पहुँचते ही, उसने उसके द्वारा मूषिक-नगरको सन्तापित किया। तीसरे वर्षमें फिर

पंक्ति ५–उस गन्धर्व-वेदमें निपुण-मतिने दम्प, नृत्य, गीत, वाद्य, सन्दर्शन, उत्सव और समाजके द्वारा नगरीका मनोरञ्जन किया।

और चौथे वर्षमें, विद्याधर-निवासोंको, जो पहले कभी नष्ट नहीं हुए थे और जो कलिंगके पूर्व राजाओंके निर्माण किये हुए थे.....

उनके मुकुटोंको व्यर्थ करके और उनके लोहेके टोपोंके दो खंड करके और उनके छत्र,

पंक्ति ६–और भृंगारों (सुवर्ण-कलशों) को नष्ट करके तथा गिराकर, और उनके समस्त बहुमूल्य पदार्थों तथा रत्नोंका हरण करके, उसने समस्त राष्ट्रिकों और भोजकोंसे अपने चरणोंकी वन्दना कराई।

इसके बाद **पाँचवें वर्षमें** उसने तनसुलिय मार्गसे नगरीमें उस प्रणाली (नहर) का प्रवेश किया जिसको नन्द-राजने तीन सौ वर्ष पहले खुदवाया था।

छठे वर्षमें उसने राजसूय-यज्ञ कर-के सब करोंको क्षमा कर दिया,

पंक्ति ७–पौर और जानपद (संस्था-ओं) पर अनेक शतसहस्र-अनुग्रह वित-रण किये।

सातवें वर्ष राज्य करते हुए, वज्र घरानेकी धृष्टि (प्राकृत-धिसि) नाम्नी गृहिणीने मातृक पदको पूर्ण करके सकुमार (?)...(।)

आठवें वर्षमें उसने (खारवेलने) बड़ी दीवारवाले गोरथगिरि पर एक बड़ी सेनाके द्वारा

पंक्ति ८–आक्रमण करके राजगृह-को घेर लिया। पराक्रमके कार्योंके इस समाचारके कारण नरेन्द्र [नाम]...अपनी घिरी हुई सेनाको छुड़ानेके लिये मथुरा-को चला गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(नवें वर्षमें) उसने दिये.....पल्लव युक्त

पंक्ति ९–कल्पवृक्ष, सारथी सहित हय-गज-रथ और सबको अग्निवेदिका सहित गृह, आवास और परिवसन। सब दानको ग्रहण कराए जानेके लिए उसने ब्राह्मणोंकी जातिपंक्ति (जातीय संस्थाओं) को भूमि प्रदान की। अर्हत्... ...व.....न.....गिया (?)

पंक्ति १०–[क][ि] मानैः (?) उसने महाविजय-प्रासाद नामक राज-सन्निवास, ३८ सहस्रकी लागतका बनवाया।

दसवें वर्षमें–उसने पवित्र विधानों द्वारा युद्धकी तैयारी करके देश जीतनेकी इच्छासे, भारतवर्ष (उत्तरी भारत) को प्रस्थान किया। .....क्लेश (?) से रहित .....उसने आक्रमण किये गये लोगोंके मणि और रत्नोंको पाया।

पंक्ति ११–(ग्यारहवें वर्षमें) पूर्व राजाओंके बनवाये हुए मण्डपमें, जिसके पहिये और जिसकी लकड़ी मोटी, ऊँची और विशाल थी, जनपदसे प्रतिष्ठित तेरहवें वर्ष पूर्वसे विद्यमान केतुभद्रकी तिरू (नीम) काष्ठकी अमर मूर्तिको उसने उत्सवसे निकाला।

बारहवें वर्षमें–.....उसने उत्तरापथ (उत्तरी पञ्जाब और सीमान्त प्रदेश) के राजाओंमें त्रास उत्पन्न किया।

पंक्ति १२–.....और मगधके निवासियोंमें विपुल भय उत्पन्न करते हुए उसने अपने हाथियोंको गंगा पार कराया और मगधके राजा बृहस्पतिमित्रसे अपने चरणोंकी बन्दना कराई.....(वह) कलिंग–जिनकी मूर्त्तिको जिसे नन्दराज ले गया था, घर लौटा लाया और अंग और मगधकी अमूल्य वस्तुओंको भी ले आया।

पंक्ति १३–उसने.....जठरोल्लिखित (जिनके भीतर लेख खुदे हैं) उत्तम शिखर, सौ कारीगरोंको भूमि-प्रदान करके, बनवाए और यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि वह पाण्ड्यराजसे हस्तिनावोंमें भराकर श्रेष्ठ हय, हस्ति, माणिक और बहुतसे मुक्ता और रत्न नजरानेमें लाया।

पंक्ति १४–उसने.....वश में किया।

फिर तरहवें वर्षमें व्रत पूरा होने पर (खारवेलने) उन याप-ज्ञापकोंको जो पूज्य कुमारी पर्वतपर, जहाँ जिनका चक्र पूर्ण रूपसे स्थापित है, समाधियों पर याप और क्षेमकी क्रियाओंमें प्रवृत्त थे; राजभृतियोंको वितरण किया। पूजा और अन्य उपासक कृत्योंके क्रमको श्रीजीवदेवकी भाँति खारवेलने प्रचलित रखा।

पंक्ति १५–सुविहित श्रमणोंके निमित्त शास्त्र नेत्रके धारकों, ज्ञानियों और तपोबलसे पूर्ण ऋषियोंके लिए (उसके द्वारा) एक संघायन (एकत्र होनेका भवन) बनाया गया। अर्हत्की समाधि (निषद्या) के निकट, पहाड़की ढालपर, बहुत योजनोंसे लाये हुए, और सुन्दर खानोंसे निकाले हुए पत्थरोंसे, अपनी सिंहप्रस्थी रानी 'धृष्टी'के निमित्त-विश्रामागार—

पंक्ति १६–और उसने पाटालिकाओंमें रत्न-जटित स्तम्भोंको पचहत्तर लाख पणों (मुद्राओं) के व्ययसे प्रतिष्ठापित किया। वह (इस समय) मुरिय कालके १६४वें वर्षको पूर्ण करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह क्षेमराज, वर्द्धराज, भिक्षुराज और धर्मराज है और कल्याणको देखता रहा है, सुनता रहा है और अनुभव करता रहा है।

पंक्ति १७——गुणविशेष-कुशल, सर्व मतोंकी पूजा करनेवाला, सर्व देवालयोंका संस्कार करानेवाला, जिसके रथ और जिसकी सेनाको कभी कोई रोक न सका, जिसका चक्र (सेना) चक्रपुर (सेना-पति) के द्वारा सुरक्षित रहता है, जिसका चक्र प्रवृत्त है और जो राजर्षिवंश-कुलमें उत्पन्न हुआ है, ऐसा महाविजयी राजा श्रीखारवेरल है।

परिशिष्ट।

शिलालेखकी प्रसिद्ध घटनाओंका तिथिपत्र।

बी० सी०	(ईसा के पूर्व)		
,,	१४६० (लगभग)	...	केतु भद्र
,,	४६० (लगभग)	...	कलिंगमें नन्द-शासन
,,	...६२३०	...	अशोककी मृत्यु]
,,	[२२० (लगभग)	...	कलिंगके तृतीय-राजवंशका स्थापन]
,,	१४७ ...	...	खारवेलका जन्म
,,	[१८८ ...	...	मौर्यवंशका अन्त और पुष्पमित्रका राज्य प्राप्त करना]
,,	१८२ ...	...	खारवेलका युवराज होना
,,	[१८० (लगभग)	...	सातकर्णि प्रथमका राज्य प्रारम्भ]
,,	१७३ ...	...	खारवेलका राज्याभिषेक
,,	१७२ ...	...	मूषिक-नगरपर आक्रमण
,,	१६८ ...	...	राष्ट्रिकों और भोजकोंका पराजय
,,	१६७ ...	...	राजसूय-यज्ञ
,,	१६५ ...	...	मगधपर प्रथम बार आक्रमण
,,	१६१ ...	...	उत्तरापथ और मगधपर आक्रमण, पाण्डवराज से अदेय (नजराने)की प्राप्ति
,,	१६० ...	...	शिलालेखकी तिथि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सनातनी हिन्दू।

महात्मा गाँधीके एक लेखका अनुवाद।

मुझसे लोग अकसर पूछा करते हैं कि आप अपनेको चुस्त 'सनातनी हिन्दू' और' वैष्णव' क्यों कर कहलवाते हैं? मैं समझता हूँ कि इस समय मुझे इस प्रश्नका उत्तर दे डालना चाहिए।

इस उत्तरमें सनातनी हिन्दूकी व्याख्या और वैष्णवकी पहचान आ जायगी।

जो व्यक्ति हिन्दूस्तानमें हिन्दू कुलमें जन्म लेकर, वेद उपनिषद् पुराणादि ग्रन्थोंको धर्मग्रन्थके रूपमें मानता है; जो सत्य, अहिंसादि पाँच यमों पर श्रद्धा रखता है और उनका यथाशक्ति पालन करता है; जो मानता है कि आत्मा है, परमात्मा है, आत्मा अजर और अमर है, फिर भी देहाध्यासके कारण अनेक योनियोंमें आवागमन करता रहता है, उसे मोक्ष मिल सकता है और मोक्ष परम पुरुषार्थ है: जो वर्णाश्रम और गोरक्षाधर्मको मानता है, वह हिन्दू है। ऐसी मेरी मान्यता है। और जो मनुष्य इन सब बातोंको माननेके अतिरिक्त वैष्णव सम्प्रदायको माननेवाले कुलमें उत्पन्न हुआ हो और उसका जिसने त्याग न किया हो; जिसमें नरसिंह मेहताके 'वैष्णवजन*' नामक भजनमें वर्णन किये हुए गुण थोड़े बहुत अंशोंमें मौजूद हों और जो उन गुणोंको पूर्ण करने के लिए प्रयत्न करता हो, वह वैष्णव है।

मेरा पूरा विश्वास है कि मुझमें ऊपर बतलाए हुए चिह्न अनेक अंशोंमें मौजूद हैं और उन्हें अधिक दृढ़ीभूत करनेके लिए मैं निरन्तर प्रयत्नशील रहता हूँ। इसलिए मैं बड़ी नम्रता परन्तु दृढ़ताके साथ अपने आपको चुस्त (पक्का) सनातनी हिन्दू और वैष्णव कहलानेमें संकोच नहीं करता। मेरी समझमें हिन्दू धर्मका स्थूल बाह्य स्वरूप गोरक्षा है। इस गोरक्षाके कार्यमें सारी हिन्दू जनता असमर्थ बन गई है। इससे मैं हिन्दुओंको 'नपुंसक' मानता हूँ और उन नपुंसकोंमें मैं अपने आपको घटियासे घटिया नपुंसक समझता हूँ। मैं नहीं समझता कि मैंने जो तपश्चर्या गोरक्षाके लिए की है और कर रहा हूँ, उससे अधिक तपश्चर्या और कोई करता है, और गो-वंशके प्रति मेरी जो सहानुभूति है उससे अधिक सहानुभूति किसी दूसरेमें है। इसके लिए मेरे बराबर तपश्चर्या ज्ञानपूर्वक तो शायद ही किसीने की होगी। जबतक हिन्दू गायपर दया नहीं रखते, पशुओंको हिन्दू स्वयं ही अनेक तरहके दुःख देते हैं, जबतक वे मुसलमानोंकी प्रीति सम्पादन करके उनसे प्रेमकी ख़ातिर गोवध नहीं छुड़ा सकते हैं, जबतक अँगरेज़ लोग हिन्दुस्तानमें गोवध करते हैं, और उसको सहन करते हुए हिन्दू अँगरेज़ी सल्तनतकी सलामी बजाते हैं तबतक मैं समझता हूँ कि हिन्दू धर्ममेंसे ब्राह्मण और क्षत्रिय धर्मका लोप हो गया है; और इस कारण मैं जन्मसे वैश्य होनेपर भी उक्त दोनों धर्मोंका पालन करनेके लिए निरन्तर प्रयत्न कर रहा हूँ।

*यह भजन ५ दिसम्बरके 'नवजीवन' में प्रकाशित हुआ है। उसके अनुसार वैष्णवमें नीचे लिखे २० गुण होने चाहिएँ—१ परदुःख भंजन करनेवाला हो, २ फिर भी निरभिमानी हो, ३ सबकी वन्दना करे, ४ किसीकी निन्दा न करे, ५—६ वचनका और काछ (कच्छ) का दृढ़ हो, ७ निश्चल-मन हो, ८ समदृष्टि हो, ९ तृष्णात्यागी हो, १० एकपत्नीव्रत पालनेवाला हो, ११—१२ सत्य और अचौर्य पालता हो, ११ मायातीत हो, १४ वीतराग हो, १५ रामभक्त हो, १६ पवित्र हो, १७—२० लोभ-कपट-काम क्रोध रहित हो,। —अनुवादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरी समझमें हिन्दू-धर्मका अन्तर-स्वरूप सत्य और अहिंसा है। मैंने अपनी जान पहचानके लोगोंमें ऐसा एक भी आदमी नहीं देखा जो सत्यका सेवन उतनी सूक्ष्मतासे करता हो जितना मैं बचपनसे अबतक कर रहा हूँ। अहिंसाका जीता जागता लक्षण प्रेम—अवैर है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरे हृदयमें प्रेम छलक रहा है—भीतर समाता नहीं है। मुझे स्वप्नमें भी किसीके प्रति वैरभाव उत्पन्न नहीं हुआ। डायरके दुष्कृत्य जानकर भी उसके प्रति मुझे वैर उत्पन्न नहीं होता। जहाँ जहाँ मैंने दुःख देखे हैं, अन्याय देखे हैं, वहाँ मेरा आत्मा व्याकुल हुआ है।

हिन्दूधर्मका तत्त्व मोक्ष है। मैं मोक्षके लिए तड़फड़ा रहा हूँ। मेरी सारी प्रवृत्तियाँ मोक्षके लिए हैं। मुझे जितना विश्वास अपने शरीरके अस्तित्व और उसकी क्षणिकताके विषयमें है, उतना ही आत्माके अस्तित्व और उसके अमृतत्त्वके विषयमें है।

इन सब कारणोंसे जब कोई मुझसे 'चुस्त सनातनी हिन्दू' कहता है तब मुझे प्रसन्नता होती है।

यदि कोई मुझसे पूछे कि तुमने शास्त्रोंका गहरा अभ्यास किया है? तो मैं उससे कहूँगा कि नहीं, मैंने नहीं किया। और यदि किया भी है तो विद्वान्की दृष्टिसे नहीं किया। मेरा संस्कृत-ज्ञान बहुत थोड़ा है। संस्कृतके भाषानुवाद भी मैंने थोड़े ही पढ़े हैं। यह दावा भी मैं नहीं कर सकता कि मैंने कोई एक वेद भी पूरा पूरा पढ़ा है। फिर भी मैंने शास्त्रोंको धर्मदृष्टिसे जान लिया है। उनका रहस्य मैं समझ गया हूँ और मेरी समझमें वेदोंको पढ़े बिना भी मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

मुझे शास्त्रोंको पढ़ने और समझनेकी कुंजी मिल गई है। जो शास्त्रवचन सत्यका, अहिंसाका, ब्रह्मचर्यका विरोधी हो, वह चाहे जहाँसे मिला हो, अप्रमाण है। शास्त्र बुद्धिसे परे नहीं हैं। जो शास्त्र बुद्धिग्राह्य न हों, उन्हें हम रद्द कर सकते हैं। उपनिषदोंको मैं पढ़ गया हूँ। मैंने ऐसे भी उपनिषत् पढ़े हैं, जो मुझे बुद्धिग्राह्य नहीं जँचे। इससे मैंने उन्हें आधारभूत नहीं माना। यह बात अनेक कवियोंने कही है कि जो शास्त्रोंके अक्षरोंसे चिमटा रहता है—वह 'वेदिया ढोर' या वेदज्ञ पशु है। शङ्कर आदि आचार्योंने शास्त्रोंका दोहन बहुत थोड़े वाक्योंमें कर दिया है; और उन सबका तात्पर्य यह है कि हमें ईश्वरभक्ति करके ज्ञान और उस ज्ञानके द्वारा मोक्ष प्राप्त करना चाहिए। गुजरातके 'अखा भगत' ने कहा है:—

सूतर आवे त्यम तुं रहे, ज्यम त्यम करीने हरिने लहे।

जो शास्त्र मदिरापान, मांसभक्षण, पाखण्ड इत्यादि सिखलाते हैं वे शास्त्र नहीं कहला सकते।

स्मृतियोंके नामसे भी बड़ा अधर्म फैल रहा है। स्मृति आदि ग्रन्थोंके अक्षरोंमें उलझकर हम नरककी योग्यता प्राप्त कर रहे हैं। स्मृतियोंसे भ्रमित होकर हिन्दू कहलानेवाले लोग व्यभिचार करते हैं और बाल-कन्याओंके ऊपर बलात्कार करने-करानेके लिए तैयार रहते हैं।

अब यह एक बड़ा भारी प्रश्न उठता है कि शास्त्र अनेक हैं। उनमेंसे हम किसे क्षेपक समझें, किसे ग्राह्य गिनें और किसे त्याज्य मानें। यदि आज ब्राह्मणधर्मका लोप न हुआ होता, तो हम किसी ऐसे ब्राह्मणको खोजकर उससे उक्त प्रश्नका समाधान कर लेते जो यम-नियमादिके पालनसे शुद्ध होता और जिसने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तम ज्ञान प्राप्त किया होता। ऐसे ब्राह्मणोंके अभावसे ही इस समय भक्ति-मार्ग प्रधान हो रहा है। जब हम पाखण्ड, दम्भ, मद, माया आदि पापोंके साथ असहकार करके जो कि आधुनिक सरकारमें अनेक रूपोंमें प्रकट हो रहे हैं, आत्मशुद्धि करेंगे, उस समय शायद हमें कोई शास्त्रदोहन करनेवाला संस्कृत पुरुष मिल जाय। तबतक हमें सरल भावसे मूल तत्त्वोंको पकड़े हरिभक्त होकर विचरना चाहिए। इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है।

"गुरु बिना ज्ञान नहीं होता।" इसमें सन्देह नहीं कि यह एक सुवर्णमय वाक्य है। परन्तु इस समय तो गुरु मिलना ही कठिन हो रहा है। सद्गुरुके अभावमें चाहे जिसको गुरु बनाकर संसारसागरके बीचमें डूब मरना बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। जो तारे वही गुरु है। जो स्वयं ही तरना नहीं जानता वह दूसरोंको क्या तारेगा? ऐसे तारनेवाले यदि कहीं हों भी तो वे सुलभ नहीं हैं।

अब ज़रा वर्णाश्रम पर आइये। चार वर्णोंके सिवा और कोई वर्ण नहीं है। मेरी मानता यही है कि वर्ण जन्मसे है। जो ब्राह्मण कुलमें जन्मा है वह ब्राह्मण रहकर ही मरेगा। गुणसे वह भले ही अब्राह्मण हो जाय, परन्तु उसका ब्राह्मण शरीर ब्राह्मण ही रहेगा। जो ब्राह्मण ब्राह्मण-धर्मका पालन नहीं करता, वह अपने गुणोंके अनुसार शूद्र योनिमें और पशु योनिमें भी जन्म लेता है। मेरे सदृश ब्राह्मण और क्षत्रिय-धर्म पालन करनेवाले वैश्यको यदि फिर जन्म लेना पड़े, तो दूसरे भवमें भले ही ब्राह्मण या क्षत्रिय जन्म मिले, परन्तु इस जन्ममें तो वैश्य ही रहना पड़ेगा। और यह बात है भी यथार्थ। यद्यपि हिन्दूधर्ममें समय समय पर दूसरे धर्मवाले समा गये हैं, परन्तु वे उसी जन्ममें हिन्दू नहीं कहलाये। हिन्दू-जगत् एक समुद्र है। उसके पेटमें सारा कूड़ा-कर्कट आकर साफ़ हो जाता है—शान्त हो जाता है। ऐसा बराबर होता रहा है। इटली, ग्रीस आदि देशोंके लोग आकर हिन्दूधर्ममें समा गये हैं, परन्तु उन्हें किसीने हिन्दू बनाया नहीं। कालान्तरमें ऐसी घटती बढ़ती होती ही रही है। हिन्दूधर्म ईसाई और मुसलमान धर्मोंके समान दूसरे धर्मवालोंको यह निमन्त्रण नहीं देता कि तुम हमारे धर्ममें आकर मिल जाओ। उसका आदेश है कि सबको अपने अपने धर्मका ही पालन करना चाहिए। सिस्टर निवेदिता जैसी विदुषी हिन्दूधर्ममें आ गई, फिर भी हम उसे हिन्दूके रूपमें नहीं पहचानते। साथ ही उसका बहिष्कार या तिरस्कार भी नहीं करते। हिन्दूधर्ममें किसीके लिए 'आनापन्त' नहीं है। परन्तु उस धर्मका पालन सब कोई कर सकता है।

वर्णाश्रम एक 'कायदा' (क़ानून) है। उसका व्यावहारिक रूप जाति है। जातियोंमें बढ़ती घटती होती रहती है। जातियोंकी उत्पत्ति और नाश हुआ ही करता है। हिन्दूधर्मके बाहर यदि कोई होना चाहे तो स्वयं ही हो सकता है, किसी दूसरेके करनेसे नहीं। परन्तु वह दूसरोंके द्वारा जातिसे बाहर किया जा सकता है। जाति-बहिष्कार एक प्रकारका दण्ड है और यह सब जातियोंके हाथमें होना चाहिए।

पानी-भोजन-व्यवहार और बेटी-व्यवहार ये हिन्दूधर्मके आवश्यक चिह्न नहीं हैं। परन्तु हिन्दूधर्ममें संयमको प्रधान पद दिया गया है; इस कारण उसके पालनेवालोंके लिए पानी-भोजन-विवाह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि के सूक्ष्म प्रतिबन्ध रख दिये गये हैं। उन्हें मैं बुरा नहीं समझता। परन्तु साथ ही जो उनका पालन नहीं करता उसे मैं धर्मभ्रष्ट भी नहीं समझता। भोजन-पान और विवाह-व्यवहार चाहे जहाँ न करना, इसे मैं शिष्टाचार समझता हूँ। इसमें आरोग्य और पवित्राकी रक्षा समाई हुई है। परन्तु तिरस्कारके रूपमें किसीके भोजन-पानका त्याग करना हिन्दूधर्मके विरुद्ध है, ऐसा मैं मानता हूँ। मैंने अपने अनुभवसे निश्चय किया है कि परवर्णीयों और परधर्मियोंके साथ बेटी-व्यवहार और रोटी-व्यवहारका प्रतिबन्ध हिन्दूधर्म-की संस्कृतिकी एक आवश्यक बाड़ (परिधि) है।

यदि ऐसा है तो फिर मैं मुसलमानों-के यहाँ भोजन क्यों करता हूँ? इसलिए कि उनके यहाँ भोजन करते हुए भी मैं संयम धर्मका पूरा पूरा सेवन कर सकता हूँ। पकाई हुई चीजोंमें डबल रोटी तक खाता हूँ। क्योंकि डबलरोटीके पकानेकी क्रिया बिलकुल शुद्ध है और जिस तरह पोहे तथा फुटाने चाहे जहाँ भुने हुए खाये जाते हैं, उसी तरह डबल रोटी (रोटी या चपाती नहीं) भी चाहे जहाँकी पकी हुई खाई जा सकती है।* फिर भी मेरे साथी इतना प्रतिबन्ध नहीं पालते और मुसल-मान तथा अपनेसे इतर वर्णवालोंके यहाँ शुद्ध रीतिसे पकाये हुए अन्य खाद्य भी खा लेते हैं। ऐसा करके वे अपने सिरपर जाति-बहिष्कारकी जोखिम उठाते हैं; परन्तु उनका हिन्दूपना नहीं मिटता।

* समझमें नहीं आया कि महात्माजीका यह विचार किस दृष्टिको लिये हुए है, कैसे उन्होंने साधारण रोटीकी अपेक्षा डबल रोटीके पकानेकी क्रियाको बिलकुल शुद्ध माना है और क्योंकर डबल रोटीकी, चाहे जहाँकी पकी हुई होने-पर भी ग्राह्य प्रतिपादन किया है—दोनोंमें तात्विक दृष्टिसे क्या विशेषता है।

आश्रम (साबरमतीका सत्याग्रहाश्रम) संन्यासियों जैसा धर्म पालता है। उसमें हिन्दूधर्मके अनुसार, इस युगके योग्य, एक नई जातिका नया व्यवहार चल रहा है। इस कार्यको मैं एक प्रयोग या परीक्षा-के रूपमें कर रहा हूँ। यदि वह फलीभूत हुआ तो अनुकरणीय गिना जायगा और यदि निष्फल होगा तो उससे किसीकी कोई हानि न होगी। प्रयोग करनेवालेको भी कोई हानि नहीं होगी। क्योंकि इस परीक्षाका मूल संयम है। इसमें मेरा हेतु यह है कि सेवाधर्मका बिना कठिनाईके पालन हो और जहाँ पर धर्मका समावेश केवल खाने पीनेमें कर लिया गया है वहाँ इस रिवाजको उसके योग्य और गौण स्थान दिया जाय।

अब रही अस्पृश्यता या छूआछूत। अस्पृश्यताकी उत्पत्ति कैसे हुई, इसको कोई नहीं समझ सकता। मैंने इसके सम्बन्धमें अनुमान ही किये हैं। वे सत्य हों या असत्य, परन्तु यह तो अन्धा भी देख सकता है कि अस्पृश्यता है। बहुत समयका अभ्यास जिस तरह हमें अपने आत्माको नहीं पहचानने देता, उसी तरह हमारा बहुत पुराना अभ्यास अस्पृ-श्यताके अधर्मको भी नहीं देखने देता। किसीको भी पेटके बल चलाना, जुदा रखना, गाँवसे बाहर निकाल देना, वह मरता है या जीता, इसकी परवाह न करना, उसे जूठा भोजन खिलाना ये सब बातें कभी धर्म नहीं हो सकतीं। पंजाबके जिस ओडायर-डायरशाही अत्या-चारोंके विरुद्ध हम पुकार मचा रहे हैं, उनसे भी अधिक अन्याय और अत्याचार हम अन्त्यजों (भंगी, चमार आदि जातियों) पर कर रहे हैं। अन्त्यज पड़ोसमें नहीं रह सकता, अन्त्यजको अपनी मालिकी जमीन नहीं मिल सकती, अन्त्यजको हमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देखते ही चिल्लाकर कहना चाहिए कि "दूर रहना, मुझे छूना नहीं," अन्त्यजको गाड़ीमें साथ बैठनेकी आज्ञा नहीं। यह हिन्दूधर्म नहीं है—यह तो डायरशाही है। अस्पृश्यतामें संयम नहीं है। अस्पृश्यताको पालना चाहिए, इसके लिए यह उदाहरण दिया जाता है कि माता बच्चेका मैला उठाकर तब तक किसीको नहीं छूती है जबतक वह स्नान नहीं कर लेती। परन्तु इसमें तो माता स्वयं ही नहीं छूना चाहती। और यदि इस नियमका हम भंगियोंके सम्बन्धमें पालन करावें तो उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। (अर्थात् जिस समय भंगी मैला उठाकर आया हो उसने न स्नान किया हो, उस समय वह स्वयं ही हम लोगोंको न छूए। स्नान कर चुकनेपर छूनेकी रोक-टोक नहीं होनी चाहिए।) भंगी आदि जातियोंको अस्पृश्य गिनकर हम गन्दगीको सहन करते हैं और रोगोंको उत्पन्न करते हैं। यदि अस्पृश्यको स्पृश्य गिनने लगेंगे तो अपने उस अङ्गको (भंगी आदि जातियोंको) साफ रखना सीख जायँगे।

बहुतसे भंगियोंके घरोंको मैंने वैष्णवके घरोंसे भी उजला देखा है। उनमेंसे कितनोंकी ही सत्यवादिता, सरलता, दया आदि देखकर तो मैं चकित हो गया हूँ। मेरा विश्वास है कि हिन्दूधर्ममें अस्पृश्यता (छूआछूत) रूपी कलिके प्रवेश करनेसे ही हम पतित बन गये हैं और इसीसे गोमाताकी रक्षा करनेके लिए वीर्यहीन हो गये हैं। जबतक हम इस डायरशाहीसे मुक्त नहीं होते, तबतक अँगरेज़ी डायरशाहीसे मुक्त होनेका हमें कोई अधिकार नहीं है।*

नोट। सिर्फ यह बतलानेके लिए कि महात्मा गान्धीके विचार कैसे हैं, यह लेख प्रकट किया जाता है। अनेक लोगोंने उन्हें जैनधर्मानुयायी समझ रक्खा है। कभी कभी सार्वजनिक सभाओं और पत्रों तकमें ऐसी बातें प्रकाशित हो जाती हैं। अभी कुछ ही समय पहले पूनेके 'ज्ञानप्रकाश' में नागपुरके देशभक्त डा० मुंजेका एक संवाद प्रकाशित हुआ था। उसमें डा० मुंजेने स्पष्ट शब्दोंमें यह प्रकट किया था कि म० गान्धी इस आन्दोलनके द्वारा जैनधर्मका प्रचार कर रहे हैं और यह बड़े दुःखकी बात है। असहकार आन्दोलन दाक्षिणात्योंकी और शिवाजी आदिकी राजनीतिके बिलकुल विरुद्ध है। परन्तु किया क्या जाय, दक्षिणमें कोई बड़ा नेता नहीं रहा। इत्यादि। स्वनामधन्य स्वर्गीय लोकमान्य तिलकके साथ महात्मा गान्धीका एक सिद्धान्तके सम्बन्धमें जो थोड़ा सा विवाद हुआ था, उससे भी लोगोंने यही समझा था कि म० गान्धी जैनधर्मके अनुयायी हैं। लोकमान्यका कथन था कि 'शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्' (जैसेके साथ तैसा होनेकी नीति ठीक है) और महात्मा गान्धी कहते थे कि बुरेके साथ भी भलाई करनी चाहिए। 'अक्रोधेन जयेत् क्रोधं' (क्रोधको क्षमासे जीतना चाहिए।) इस नीतिको गान्धीजी अपने व्याख्यानोंमें अक्सर बतलाया करते हैं और यह नीति जैनधर्मकी ओर बहुत अधिक झुकी हुई मालूम होती है। उनकी जीवनचर्या, उनके व्रत-नियम, उनकी अपरिग्रहशीलता और उनकी परम अहिंसा-वृत्ति भी लोगोंके इस विचारको पुष्ट करती है कि वे जैनधर्मानुयायी हैं। परन्तु इस लेखमें पाठक देखेंगे कि वे अपनेको चुस्त सनातनी हिन्दू और वैष्णव प्रकट करते हैं।

* ६ फरवरी १९२१ के 'नवजीवन' से अनुवादित।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह सच है कि महात्माजीके जीवन पर जैनधर्मकी बहुत बड़ी छाप पड़ी है। सुप्रसिद्ध जैनतत्वज्ञ स्वर्गीय रायचन्दजीको वे बहुत बड़ा आदर्श पुरुष मानते हैं। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि मेरे चरित्र पर उनके जीवनका सबसे अधिक प्रभाव है। जैनधर्मके परम अहिंसा तत्त्वको जितने व्यापक और विशाल रूपमें उन्होंने व्यवहारयोग्य बनाकर दिखलाया है, उतना पिछले हजार वर्षोंमें शायद ही किसीने दिखलाया हो। उनका चरित्र एक सच्चेसे सच्चे जैनीके लिए भी अनुकरणीय है; और इस दृष्टिसे उन्हें 'जैन' कहना अनुचित नहीं हो सकता। फिर भी वे अपनेको 'जैन' न कहकर 'सनातनी हिन्दू' और 'वैष्णव' मानते हैं और उनके इस कथनपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं देख पड़ता।

उनके अनेक व्याख्यानों और लेखोंसे प्रकट होता है कि वे कट्टर ईश्वरवादी हैं। अर्थात् उनका जैनोंके समान अनेक परमात्माओं या सिद्धोंमें नहीं, किन्तु एक परब्रह्म परमात्मामें विश्वास है। जैन धर्मके साथ उनके विश्वासमें जो बड़ा भारी अन्तर है वह यही जान पड़ता है*। और तात्त्विक दृष्टिसे यह अन्तर साधारण नहीं है। उनकी वेद, उपनिषत्, पुराण आदि धर्मग्रन्थोंकी मान्यता भी इसी बातको पुष्ट करती है। परन्तु इस एक सिद्धान्तको छोड़कर उन्होंने अपने लेखमें जो अन्य बातें प्रकट की हैं, वे ऐसी नहीं हैं जिनका जैनधर्मके साथ सामंजस्य न हो सके।

म० गान्धी जैनी नहीं हैं और वे अपने आपको 'चुस्त सनातनी हिन्दू' कहते हैं। परन्तु इस लेखसे उनका सनातन हिन्दूधर्म कुछ विलक्षण सा मालूम होता है। क्योंकि वे वेद, पुराण, स्मृति आदि धर्मग्रन्थोंकी उतनी ही बातें माननेके लिए तैयार हैं जो बुद्धिग्राह्य हों, अर्थात् उनकी सदसद्विवेक बुद्धि जिनके माननेसे इन्कार न करती हो। वे धर्मग्रन्थोंके अक्षरों और शब्दोंसे चिमटे रहनेको—उनके अर्थों पर लड़ मरनेको—भी ठीक नहीं समझते। स्मृतियोंके प्रति तो उनके हृदयमें बहुत ही कम आदर-बुद्धि जान पड़ती है। अनेक उपनिषदोंको भी वे बुद्धिग्राह्य नहीं मानते। इन सब बातोंको दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो यों कहना चाहिए कि वे 'आगमप्रामाण्य' को बहुत अधिक महत्त्व नहीं देते। इससे यह ध्वनित होता है कि वे वेदोक्त हिंसाको, बलिदानकी प्रथाको और मांसभक्षण आदिको सर्वथा अप्रमाण मानते होंगे। उन्होंने लिखा भी है कि "जो शास्त्रवचन सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यका विरोधी हो वह चाहे जहाँसे मिला हो, मान्य नहीं हो सकता।"

उनके सामाजिक विचार भी सनातनी हिन्दुओंके लिए विलक्षण मालूम हुए बिना न रहेंगे। अस्पृश्यता और छूआछूतके 'अधर्म' को नष्ट कर देनेके लिए तो उन्होंने कमर ही कस रक्खी है। रहा वर्णाश्रम, सो उसकी कठोरता और कट्टरताको भी उन्होंने बहुत कुछ

* महात्मा गान्धीके ईश्वरविषयक इस विश्वाससम्बन्धमें अभी हमें बहुत सन्देह है। सम्भव है कि इस विषयमें उनका विचार उस विचारसे विभिन्न न हो जिसे श्रीमद्राजचन्द नामके तत्त्वज्ञानीने, जिनको महात्माजी अपना आदर्शपुरुष मानते और अपने हृदयपर जिनकी छाप स्वीकार करते हैं, उन्हें उनके प्रश्नोंके उत्तरमें सुझाया था। वे तदनुसार आत्माको ही ईश्वर समझते हों। और इसलिए उनका ईश्वरविषयक शब्दप्रयोग उसी आत्मदृष्टि अथवा किसी नयविवक्षाको लिये हुए हो। परन्तु इन सब बातोंका निर्णय और स्पष्टीकरण स्वयं महात्माजीके द्वारा ही हो सकता है और होना चाहिए। सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कम कर दिया। संयमकी पालनामें जहाँ कोई बाधा न आती हो, वहाँ खाने पीनेमें वे धर्मभ्रष्ट होना नहीं मानते। एक वर्णकी विविध जातियोंके बीच बेटी-व्यवहार होना भी उनकी समझमें बुरा नहीं है। निदान उनके विचारोंका सार सोमदेव सूरिके शब्दोंमें यही हो सकता है कि "जिनके करनेसे व्रत या संयमका घात न होता हो और विश्वासमें अन्तर न आता हो, वे सब लौकिक विधियाँ हमको माननीय हैं।"

हमारी समझमें गान्धीजीका हिन्दू धर्म एक संस्कार किया हुआ हिन्दूधर्म है। उसे उन्होंने अपनी परम शान्त, निष्पक्ष और अहिंसक वृत्तिके अनुकूल संस्कृत कर लिया है और उस संस्कारमें उनके जीवन पर जैनधर्मका जो प्रभाव पड़ा है, उसकी छाया स्पष्टतया लक्षित होती है। इसी कारण वे जैनधर्मको हिन्दूधर्मसे जुदा नहीं समझते। उन्होंने अहमदाबादमें महावीर जयन्तीके अवसर पर यह कहा भी था कि "जो सच्चा हिन्दू है वह जैन है; और जो सच्चा जैन है वह हिन्दू है।"

कोई माने या न माने और समझे या न समझे, परन्तु महात्मा गान्धीके उपदेशों और प्रभावने अलक्षित रूपसे जैनधर्मका असीम उपकार किया है; और उन नवयुवकोंके विचारोंमें तो आश्चर्यजनक परिवर्तन कर दिया है जो जैनधर्मके अहिंसा-तत्त्वको भारतका गारत करनेवाला बहुत प्रधान कारण समझ रहे थे। अहिंसामें भी कोई महती शक्ति है और वह ऐसी शक्ति है जिसके आगे एक बड़े भारी साम्राज्यकी शक्ति भी तुच्छ है। यह उन्हींके आन्दोलनने विश्वास कराया है।

नाथूराम प्रेमी।

दुष्प्राप्य और अलभ्य जैन ग्रन्थ।

२३ द्विसन्धान काव्यकी टीकाएँ।

सत्कविशिरोमणि विद्वद्रत्न धनञ्जयका बनाया हुआ 'द्विसन्धान' नामका एक सुप्रसिद्ध महाकाव्य ग्रन्थ है। अपने साहित्य तथा काव्यकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ बड़े ही महत्त्वका और उच्च कोटिका प्राचीन ग्रन्थरत्न है। इसका दूसरा नाम 'राघवपाण्डवीय' भी है। इसमें रचनाकौशलके द्वारा श्रीरामचन्द्र और पाण्डव दोनोंकी कथाओंका सम्मेलन किया गया है—एक ही शब्द-रचना परसे दोनों कथाओंका अर्थावबोध होता है। एक प्रकारसे अर्थ करने पर यह ग्रन्थ 'रामायण' मालूम होता है और दूसरे प्रकारसे अर्थ करने पर इसमें 'महाभारत' का आनन्द आने लगता है। यही इस ग्रन्थमें सबसे बड़ी खूबी है और इसीसे इसका सार्थक नाम 'द्विसन्धान' रक्खा गया है। ऐसे महत्त्वके ग्रन्थकी जितनी अच्छी और विस्तृत टीका उपलब्ध हो, उतना ही अच्छा है। अभीतक इस ग्रन्थ पर हमें दो संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हुई हैं। एक टीका श्रीनेमिचन्द्रकी बनाई हुई है जिसका नाम 'पदकौमुदी' है। यह टीका आराके जैनसिद्धान्त भवनमें मौजूद है। इसकी पत्रसंख्या २५३ और श्लोकसंख्या प्रायः नौ हज़ार है। टीकाके मङ्गलाचरणका प्रथम पद्य इस प्रकार है:—

श्रीमान् शिवानन्दनयीशवन्द्यो
भूयाद्विभूत्यै मुनिसुव्रतो वः।
सद्धर्मसंभूति नरेन्द्र पूज्यो
भिन्नेन्द्रनीलोल्लसदंग कान्तिः ॥१॥

यह टीका जिन नेमिचन्द्रकी बनाई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुई है वे 'देवनन्दी' के शिष्य और 'विनयचन्द्र' के प्रशिष्य थे, ऐसा उक्त मङ्गलाचरणके पद्यों और सन्धियों परसे पाया जाता है। साथ ही यह भी मालूम होता है कि 'त्रैलोक्यरीति' भी उनके कोई गुरु अथवा समकालीन विद्वान् थे। यथा—

जीयान्मृगेन्द्रो विनयेन्दुनामा
संवित्सदाराजित कंठपीठः।
प्रक्षीववादीभकपोलभित्ति
प्रमाक्षरैः स्वैर्नखरैर्विदार्य ॥२॥
तस्याथ शिष्योऽजनि देवनन्दी
सद्ब्रह्मचर्यव्रत देवनन्दी।
पदाम्बुज द्वन्द्वमनिन्द्यमर्च्य
तस्योत्तमांगेन नमस्करोमि ॥३॥
त्रैलोक्यकीर्तेश्चरणारविन्दं
पारे नयार्णोदधि सम्प्रणम्य।
पिपासतां राघवपाण्डवीयां
टीकां करिष्ये पदकौमुदीं तां ॥४॥

"इति निरवद्यविद्यामण्डनमण्डित-पण्डितमण्डलीडितस्य षट्तर्कचक्रवर्तिनः श्रीमद्विनयचन्द्रपण्डितस्य गुरोरन्तेवासिनो देवनन्दिनाम्नः शिष्येण सकलकलोद्भव-चारुचातुरीचन्द्रिकाचकोरेण नेमिचन्द्रेण विरचितायां द्विसन्धानकवेर्धनञ्जयस्य राघवपाण्डवीयाभिधानस्य महाकाव्यस्य पदकौमुदी नामदधानायां टीकायां नायकाभ्युदयरावणजरासन्धवधवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः॥

२५ वर्ष हुए, सन १८९५ में, बम्बईके निर्णयसागर प्रेसने, अपनी काव्यमालामें 'द्विसंधान' को प्रकाशित किया था। उसके साथ पं० बदरीनाथ (अजैन) की बनाई हुई जो टीका लगी हुई है, वह इसी पदकौमुदी नामकी विस्तृत टीकाका सार लेकर बनाई गई है, जैसा कि उसकी भूमिकाके निम्न वाक्योंसे प्रकट है:—

सभंगाभंगश्लेषप्रधानतया कथा द्वयवर्णकस्य तस्य चास्य महाकाव्यस्य टीकापि विनयचन्द्रान्तेवासि (?) नेमिचन्द्रेण महता वृत्तासीत्। तस्याश्चातीव विस्तृतत्वात्ततः सारमुद्धृत्य श्रीबदरीनाथेनेव सकलसुमनोभूषितेन दार्धीच जयपुर संस्कृतपाठशालाध्यापकविद्वद्वर बदरीनाथेनेयं सुधारूपा प्रकाशिता।

ऐसी हालतमें नेमिचन्द्रकी उक्त विस्तृत टीकाके उद्धारकी बड़ी ज़रूरत है। वह ज़रूर माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो जानी चाहिए, जिससे विद्वान् लोग उसकी विशेषताओंसे लाभ उठा सकें और एक विद्वान्की अच्छी कृति सुरक्षित हो जाय।

दूसरी टीका

कवि 'देवर' की बनाई हुई है, जिसे उन्होंने 'अरलु' नामके एक प्रधान सेठकी प्रेरणासे रचा था, जैसा कि उसके प्रत्येक सर्गके अन्तमें दिये हुए निम्न वाक्यसे प्रकट है:—

अकारयदिमां टीकामरलुः श्रेष्ठिपुंगवः।
अकरोदमृताशिष्ट वचनः कविदेवरः॥

इस टीकाका नाम 'राघवपांडवीय प्रकाशिका' है और यह भी आराके जैनसिद्धान्त भवनमें मौजूद है। परन्तु यह टीका ताड़पत्रोंपर कर्णाटकी अक्षरोंमें है और इसकी अवस्था अत्यन्त जीर्णशीर्ण है, ऐसा हमें पं० शान्तिराजजीके पत्रसे मालूम हुआ है। सूचीमें इसकी पत्रसंख्या ५२ और श्लोक-संख्या १२०० दी है। कवि देवरने टीकाके शुरूमें अमरकीर्ति, सिंहनन्दि, धर्मभूषण, श्रीवर्धदेव, भट्टारक मुनि, इन आचार्योंका स्मरण तथा स्तवन किया है; और इसके बाद अरलु सेठका तथा अपना कुछ परिचय दिया है। अरलु सेठ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के परिचयमें उन्हें कर्णाटक देशनिवासी, 'कीर्ति' नामके पिता और 'गुम्मटा' नामकी मातासे उत्पन्न, अर्हद्भक्त, श्रेष्ठितिलक, कवियोंके लिये कल्पद्रुम, स्त्रियोंके लिये कामदेव, महा गुणवान्, निर्मल कीर्तिसे शोभित, कलावान, अशोक और सरल प्रकट किया है। और अपना परिचय सिर्फ इतना ही दिया है कि अपनेको 'रामभट्ट' का पुत्र बतलाया है जो कि 'परवादि घरट्ट' थे, अर्थात् अपनी युक्तियों द्वारा अन्य वादियोंको पीस डालनेवाले थे। इससे कवि देवरके पिता एक नैयायिक विद्वान् थे, ऐसा पाया जाता है।

मङ्गलाचरण और परिचयादि-विषयक वे पद्य इस प्रकार हैं:—

"आरी (?) सितान्या रचयत्ववन्द्या
न्याराधकानामयमादि देवः।
आरात्रिकायन्त यदीश्वराया-
मास्थायिकायाममरेन्द्रनत्यः ॥१॥
नरेन्द्रार्चितपादाय नमोस्त्वमरकीर्तये।
यस्तपःशिखिभीतेव ययौ कीर्तिः सुरापगां॥
सिंहनन्दिमुनीन्द्रस्य स्मरामि पदयोर्द्वयम्।
श्रीः स्पर्धयेव दासीत्वं श्रायिता यत्तपःश्रिया॥
धर्मभूषणदेवस्य दध्रे चरण रेखया।
रत्नत्रयनिधानाग्ररोचमान लिपिच्छविः॥
जिगाय भुवनं येन तेनैव धनुषास्मरः।
जितः श्रीवर्धदेवेन चकार तृणचुम्बितां(?)।
भट्टारकमुनेः पादावपूर्वकमले स्तुमः।
यदग्रे मुकुली भावं यांति राजकराः परं॥
आसीत्कर्णाटभूमध्यमध्यासीनो वणिग्वरः।
मूर्तेव जिनधर्मस्य कीर्तिः कीर्तिसमाह्वयः॥
तस्य जाया जयासत्यं मात्राधिक्यमनीषिणे(?)
गुम्मटेति भुविख्याता नामतश्चार्थतश्च या॥
नन्दयन् विदुषां वृन्दं तयोरजनिनन्दनः।
अर्हत्सुलीन चित्तत्वादवत्रश्रेष्ठिसंज्ञया॥
ममास्मिन्वैस्मित्यं, यदयमरलुः श्रेष्ठितिलकः।
कवीनां कल्पद्रुर्भवति महिलानां च मदनः॥
गुणैर्व्यूढैस्तुंगः सुरभिरपिकात्या धवलया।
कलावान् भद्रश्रीरनुतलमशोकश्च सरलः॥
तत्प्रियाय तनोतीमां टीकां हि कवि-देवरः।
परवादिवरट्टस्य रामभट्टस्य नन्दनः॥"

यह टीका भी माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालामें निकल जानी चाहिए। इसका नाम किसी दूसरे प्रसिद्ध भण्डारकी सूचीमें अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया।

२४—औदार्यचिन्तामणि।

'औदार्यचिन्तामणि' नामका एक ग्रन्थ श्रुतसागर सूरिका बनाया हुआ है। यह संस्कृतमें प्राकृत भाषाका व्याकरण ग्रन्थ है। श्रीहेमचन्द्र और त्रिविक्रमके प्राकृत व्याकरणोंसे यह व्याकरण बड़ा है और अधिक व्याख्याको लिये हुए है। इसमें छः अध्याय हैं। प्रत्येक अध्यायके शुरू और अन्तमें मङ्गलाचरणादि-विषयक जो पद्य इस ग्रन्थमें दिये हैं, उनमेंसे ऐतिहासिक तत्त्वको लिये हुए कुछ पद्य इस प्रकार हैं:—

अथ प्रणम्य सर्वज्ञं विद्यानन्द्यास्पदप्रदम्।
पूज्यपादं प्रवक्ष्यामि प्राकृत व्याकृतिं सतां॥
श्रीपूज्यपादसूरिर्विद्यानन्दी समन्तभद्रगुरुः।
श्रीभदकलंकदेवो जिनदेवो मंगलं दिशतु॥
श्रीकुन्द कुन्दसूरिर्विद्यानन्दिप्रभोश्च पदकंजम्।
न त्वा च पूज्यपादं संयुक्तमतः परं वक्ष्ये॥
श्रीपूज्यपादमकलंक समन्तभद्र
श्रीकुन्दकुन्दजिनचन्द्रविशाखसंज्ञाः।
श्रीमाधनन्दिशिवकोटि शिवायनाख्या,
विद्यादिनन्दि गुरवः शम मादिशंतु॥
श्रीसर्वज्ञमदोषं तदुक्तवचनानि
निखिलसुखभवनं।
नत्वा विद्यानन्दं स्वाद्यध्यायं प्ररचयामि॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्याविरोधं नोधनिधिसाधुनिरस्तवादः
श्रीमानुमाप्रभुरनन्तर पूज्यपादः।
शं वो ददातु सदयः शुभदानदक्षो
विद्यादिनन्दिगुरुरात्मविदां मुमुक्षुः॥
समन्तभद्रैरपि पूज्यपादै
कलंकमुक्तैर कलंकदेवैः।
यदुक्तम प्राकृतमर्थसारं
तत्प्राकृतं च श्रुतसागरेण॥

प्रत्येक अध्यायके अन्तमें जो सन्धि दी है वह इस प्रकारकी है:—

"इत्युभयभाषाकविचक्रवर्ति-व्याकरणकमलमार्तंड-तार्किकबुधशिरोमणि परमागमप्रवीण-सूरिश्रीदेवेन्द्रकीर्तिप्रशिष्यमुमुक्षुश्रीविद्यानन्दिप्रियशिष्य-श्रीमूलसंघपरमात्मविदुष-सूरिश्रीश्रुतसागर विरचिते, औदार्यचिन्तामणि नाम्नि (स्वोपज्ञवृत्तिनि) प्राकृत व्याकरणे.....।"

इस परिचयसे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थके कर्त्ता वे ही श्रुतसागर हैं जो षट्प्राभृत, तत्त्वार्थसूत्र और यशस्तिलक चम्पू नामक ग्रन्थोंकी टीकाओंके कर्त्ता हैं; क्योंकि इन टीका ग्रन्थोंमें इनके कर्त्ता श्रुतसागरका भी ऐसा ही परिचय पाया जाता है। बल्कि यशस्तिलककी टीकामें 'प्राकृत व्याकरणाद्यनेक शास्त्ररचनाचंचुना' इस विशेषणके द्वारा यह साफ़ तौरसे उल्लेख भी किया गया है कि आपने प्राकृत व्याकरण आदि अनेक शास्त्रोंकी रचना की है। श्रुतसागर मल्लिभूषणके गुरुभाई और मल्लिभूषणके प्रशिष्य ब्रह्मनेमिदत्तके समकालीन विद्वान् थे। ब्रह्मनेमिदत्तने श्रीपालचरित्र नामका एक ग्रन्थ वि० सं० १५८५ में बनाकर समाप्त किया है; और इस ग्रन्थके एक उल्लेखसे ऐसा मालूम होता है कि श्रुतसागर उस समय मौजूद थे। इसलिए श्रुतसागरका सुनिश्चित समय विक्रमकी १६वीं शताब्दी है। उनका यह व्याकरण यशस्तिलककी टीकासे पहले बन चुका था। हमारी रायमें यह ग्रन्थ १६ वीं शताब्दीके मध्य भागका बना हुआ है। यह ग्रन्थ बङ्गालकी एशियाटिक सोसायटीकी लाइब्रेरीमें मौजूद है। दूसरे किसी प्रसिद्ध भण्डारकी सूचीमें इस ग्रन्थका नाम अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया। इस ग्रन्थका भी उद्धार होनेकी बड़ी ज़रूरत है। यह भी माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालामें प्रकाशित होना चाहिए जिसमें प्राकृत भाषाके शिक्षणमें अच्छी सहायता मिल सके। इसकी जो प्रति उक्त लाइब्रेरीमें मौजूद है उसके छठे अध्यायका अन्तिम भाग कुछ खण्डित है। इसलिए और जहाँ कहींके भण्डारमें यह ग्रन्थ मौजूद हो वहाँके भाइयोंको उसकी सूचना देनी चाहिए।*

सेठ चिरंजीलालजीका दान।

पं० उदयलालजीके विवाहके समय वर्धानिवासी सेठ चिरंजीलालजी बड़जात्याने १००) का दान इस उद्देश्यसे दिया था कि उन रुपयोंके द्वारा स्त्रीसमाजमें विदेशी वस्तु-बहिष्कार और असहकारका प्रचार किया जाय। खण्डेलवाल हितेच्छुके सम्पादक महाशयने इस विषय पर ७ पेजका एक 'गूढ़ गवेषणात्मक' लेख लिखनेका कष्ट उठाया है

* औदार्यचिन्तामणि सम्बन्धी इस नोटके लिखनेमें हमें श्रीयुत एस० पी० वी० रङ्गनाथ स्वामी आर्यवरगुरु, त्रिजगापट्टमके एक अँगरेज़ी लेखपरसे बहुत कुछ सहायता मिली है, जिसके लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। इस व्याकरणके प्रथम तीन अध्यायोंका सूत्रपाठ भी हमें छपा हुआ मिला है। परन्तु उसे कहाँ और किसने छपाया है, यह मालूम नहीं हुआ। सम्भव है कि उक्त रङ्गनाथस्वामीका ही वह छपाया हुआ हो।—सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और उसमें अनेक अनुमान-प्रमाणोंसे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि नहीं, उक्त रुपये विधवा-विवाहके प्रचारके लिये दिये गये हैं। इस लेखमें हमपर यह इलाज़म लगाया है कि सेठ चिरंजीलालजी हमारे मित्र हैं और इस कारण हमने उन्हें आपत्तिसे बचानेके लिये झूठ-मूठ ही उनके दानके उद्देश्यको बदल दिया है। परन्तु सम्पादक महाशयके इस लेखका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि वे स्वयं तो वहाँ उपस्थित न थे जो उनकी देखी सुनी बात पर कुछ विश्वास किया जाय। रहे उनके अनुमान-प्रमाण, सो वे एक असत्य बातको सत्य सिद्ध करनेके लिए लिखे गये हैं। उनके द्वारा तर्क-पद्धतिका केवल दुरुपयोग किया है। मैं स्वयं उक्त विवाहमें उपस्थित था और वक्ताके बहुत ही निकट था। अतएव मुझे उक्त असत्य अनुमान-प्रमाणोंके वाग्जालमें फँसनेकी आवश्यकता नहीं। मैं फिर भी जैनहितैषीमें प्रकाशित समाचारको दुहराता हूँ कि चिरंजीलालजीका दान स्त्रीसमाजमें विदेशी वस्तु-बहिष्कार और असहयोग प्रचारके लिए ही दिया गया है। इसके सम्बन्धमें बम्बईके और भी अनेक जैन, अजैन प्रतिष्ठित सज्जन—जो वहाँ उपस्थित थे—साक्षी दे सकते हैं; और उनकी साक्षी उन लोगोंके वचनोंसे निस्सन्देह बहुमूल्य है जिन्होंने सम्पादक महाशयको उक्त समाचार सुनाया और जो विवाहमें शामिल तो हुए थे उत्साहसे, परन्तु पंचायतके डरके मारे जिन्होंने अपना नाम तमाशगीरोंमें लिखा देनेमें ही कुशल समझी थी!

साँझ वर्तमानमें और उसके आधारसे दैनिक हिन्दुस्थानमें विवाहका जो समाचार प्रकाशित हुआ है, उसमें भी यह नहीं लिखा है कि उक्त दान विधवा-विवाहके प्रचारके लिए दिया गया है। उसमें केवल यही प्रकाशित हुआ है कि इससे स्त्रीसमाजकी उन्नतिके लिए स्त्री-उपदेशिकाएँ तैयार की जायँगी। बात यह है कि उस समय सेठीजीका जो व्याख्यान हुआ था, उसमें उन्होंने यह भी कहा था कि एक ऐसी संस्थाकी बहुत आवश्यकता है जिससे स्त्रीसमाजकी उन्नतिके लिए कुछ उपदेशिकाएँ तैयार की जायँ। जान पड़ता है, रिपोर्टरने इसी बातको आगे पीछे करके उसका सम्बन्ध दानके साथ जोड़ दिया है। रिपोर्टरने सेठीजीका जितना व्याख्यान लिखा है, उससे वह अधिक नहीं तो आठ दस गुणा अवश्य बड़ा था। उसमें उन्होंने अनेक विषयोंकी चर्चा की थी। राजनैतिक चर्चा तो उनके स्वभावमें ही दाखिल हो गई है। उनका चाहे जो व्याख्यान सुन लीजिये, उसमें राजनीतिक चर्चा आये बिना नहीं रहती। अतः उस दिन भी उन्होंने असहकार और विदेशी वस्तु-बहिष्कारके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा था। हिन्दुस्थानकी जरा सी रिपोर्ट परसे यह निर्णय कर लेना कि असहकारकी चर्चाका वहाँ कोई प्रसंग ही नहीं था, बड़े भारी साहसका काम है। क्या हितेच्छुके सम्पादक महाशय यह समझते हैं कि दैनिक पत्रोंके रिपोर्टर ऐसी सभाओंकी रिपोर्टें अक्षरशः लिखा करते हैं? उन्हें यहाँके किसी पत्रके रिपोर्टरके साथ कुछ दिनों घूमकर अपनी इस भद्दी भूलको सुधार लेना चाहिए।

सम्पादक महाशयने 'असहकार' शब्दके लिखनेमें मेरा हृद्गत अभिप्राय क्या था, उसे बतलानेमें अपना अपूर्व शब्द-पाण्डित्य प्रकट किया है और लिखा है कि मैंने इस शब्दके लिखनेमें चालाकीसे काम लिया है। वास्तवमें मेरा अभिप्राय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह है कि विधवाएँ अपने संरक्षकोंके साथ असहकार करें, उनकी आज्ञामें न रहें, आदि। पण्डितजीके उपजाऊ मस्तककी इस नई ईजादकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। सुसंस्कृत मस्तकोंको ही ऐसी बातें सूझ सकती हैं, मेरे जैसे अपण्डितोंकी पहुँच इतनी दूर तक कहाँ हो सकती है!

सेठ चिरंजीलालजीने जब एक विधवा-विवाहके अवसर पर उक्त दान किया है, तब यह स्पष्ट है कि वे विधवा-विवाहसे सहानुभूति रखते हैं; और यह सहानुभूति ही उन्हें दण्डित करनेके लिए काफ़ी है। दान चाहे असहकारके प्रचारके लिए किया गया हो और चाहे विधवा-विवाहके पोषणके लिए, दोनों ही हालतोंमें वे विधवा-विवाहके पोषक सिद्ध होते हैं। फिर समझमें नहीं आता कि मेरे लिखनेसे सेठ चिरंजीलालजी पंचायती आपत्तिसे कैसे बच जाते। और जब मैं झूठ लिखकर भी उन्हें विधवा-विवाहके अनुयायी बननेसे न बचा सका, तो मैंने वह झूठ लिखा ही क्यों? इसके सिवा यह भी समझना कठिन है कि सम्पादक महाशय इस विषयको लेकर इतना अकाण्ड-ताण्डव क्यों कर रहे हैं। विधवाविवाहके समयके दानमात्रसे भी तो वर्धाकी पंचायती उन्हें दण्डित करनेके लिए दबाई जा सकती है; और इसीके लिए उनका यह सब उद्योग मालूम होता है। उन्हें यह भी सोचना चाहिए कि जब मैं स्वयं अपने पर आनेवाली आपत्तियोंसे नहीं डर रहा हूँ, तब चिरंजीलालजीके लिए क्यों डरने लगा? इसके विरुद्ध मेरा तो यही चाहना अधिक स्वाभाविक है कि वे विधवा-विवाहके खुल्लमखुल्ला अनुयायी बन जायँ। मेरी समझमें तो अब भी उन्हें स्पष्ट शब्दोंमें कह देना चाहिए कि मैं विधवा-विवाहके साथ सहानुभूति रखता हूँ और उसका प्रचार चाहता हूँ। उन्हें इस वाग्वितण्डामें पड़ना ही न चाहिए कि वह रुपया अमुक कार्यके लिए दिया गया है और अमुकके लिए नहीं। यदि उनकी इस वाचनिक सहानुभूतिको भी खण्डेलवाल पंचायत अपराध समझती है तो समझे; पर उन्हें अपने हृदयको सबके सामने खोलकर रख देना चाहिए। यदि खण्डेलवाल जातिमें कुछ सोचने समझनेकी शक्ति बाकी होगी और उसे जातिके वास्तविक कल्याणकी इच्छा होगी तो वह केवल विचारोंके कारण जाति-च्युत करनेकी मूर्खता न करेगी। और यदि वह ऐसा करे, मनुष्यकी जन्मसिद्ध विचार-स्वाधीनता पर भी हमला करनेमें आगा-पीछा न करे, तो हमारी समझमें मनुष्यताका अपमान करनेवाली ऐसी जातिको ही दूरसे नमस्कार कर लेना अच्छा है।

थोड़ी देरके लिए मान लीजिये कि सेठजीने उक्त दान विधवा-विवाहके प्रचारके लिए ही दिया था। परन्तु जब वे स्वयं उससे इन्कार करते हैं और इन्कार करके एक तरहसे अपनी जातिके अधीन रहना स्वीकार करते हैं, तब क्या खण्डेलवाल पंचायत इतनेसे सन्तुष्ट नहीं हो सकती? क्या उसे तभी चैन मिलेगा, जब इस व्यर्थके वितण्डासे तङ्ग आकर एक उत्साही और कार्यतत्पर पुरुष खुले तौर पर उसकी मर्यादाके बन्धनको तोड़कर फेंक देगा? क्या खण्डेलवाल महासभाके सूत्रधार इसी नीतिसे अपनी जातिका कल्याण करना चाहते हैं? देशकी नौकरशाहीके समान क्या निग्रह और दमनको ही वे अपने शासनमें प्रतिष्ठित करनेकी इच्छा करते हैं? नाथूराम प्रेमी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवेन्द्र-वियोग !

आज हमें अपने पाठकोंपर यह दुःसमाचार प्रकट करते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि, जैनसमाजका वह बहुमूल्य रत्न, उसका वह सच्चा सेवक जो रात दिन समाजकी हितकामनासे व्यग्र रहता था और उसके विपुल साहित्यका उद्धार तथा प्रचार करनेके लिए सारे भारतवर्षमें दौड़धूप किया करता था, जिसने जैनधर्मके अच्छे अच्छे ग्रन्थोंको अँग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित करके उनके द्वारा विदेशोंमें भी जैनधर्मके प्रचारका बीड़ा उठाया था, जो आराके प्रेममन्दिरका पुजारी था और जिसने अपने घरपर उक्त मन्दिरकी स्थापना करके उसके द्वारा हिन्दीमें नई नई अच्छी पुस्तकोंका प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था, वह समाजका हितैषी, देशका शुभचिन्तक, स्त्रीशिक्षाका अनन्य भक्त, पुरातत्व और इतिहासका प्रेमी, सौम्यमूर्ति कुमार देवेन्द्रसाद आज इस संसारमें नहीं है ! फाल्गुण शुक्ला ८मी-को सन्ध्याके समय निर्दय कालने उसे अपने गालमें रख लिया; अथवा यों कहिये कि प्रायः २१ दिनतक शीतलाके बहाने गालमें रखकर अन्तको उस दिन उसे चबा डाला और निगल लिया !!! हा ! देवेन्द्र कितना विनयी, परोपकारी, सरल प्रकृति और गुणी था, इस बातका उस दुष्टको जरा भी खयाल नहीं आया; और न उनकी उस नवविवाहिता स्त्रीपर ही उसने तरस खाया जिसके विवाहको अभी १० महीने भी पूरे नहीं हुए थे और जो बेचारी अच्छी तरहसे चार महीने भी अपने पतिके सङ्ग नहीं रह सकी ! हाय ! यह कैसी भयङ्कर दुर्घटना है ! कैसा वज्रपात ! शोककी कैसी काली घटा ! देवेन्द्रकी प्यारी मूर्ति सामने आ आकर अदृश्य हुई जाती है ! उसके गुणों-के चिन्तवनसे हृदय विदीर्ण होता है और छाती भर भर आती है ! ऐसे उत्साही, कार्यकुशल, धर्मात्मा और गुण-ग्राही नवयुवकका समाजसे एकदम उठ जाना समाजके लिए निःसन्देह बड़े ही दुर्भाग्यकी बात है ! कुमार साहबका यह देहावसान कलकत्तेमें सेठ रामजीवन फूलचन्दजी जैनके मकान पर हुआ है। उक्त फर्मके मालिकोंने शीतला रोगसे पीड़ित कुमार साहबकी उपचर्यामें कोई बात उठा नहीं रक्खी। कलकत्तेके अच्छे अच्छे वैद्यों (कविराजों) से इलाज कराया गया और उसमें बहुत सा धन खर्च किया गया। परन्तु अफसोस ! आप लोगोंकी यह सब सेवा कुछ भी काम न आई और भावीके आगे सबको हार माननी पड़ी ! कुमार साहबकी अवस्था इस समय ३० वर्ष के लगभग थी। उनके इस असामयिक वियोगसे जैनसमाजको जो भारी क्षति पहुँची है वह अवर्णनीय है और उसे समाज सहजमें शीघ्र पूरा नहीं कर सकेगा। कुमार साहब अपनी माताके इकलौते पुत्र थे, आपके पिताका देहान्त बहुत पहले हो चुका था, आपके कोई सन्तान नहीं है और आपकी नव-विवाहिता स्त्री एक १३—१४ वर्षकी निरी अबोध बालिका है, ये सब बातें आपके वियोगजन्य दुःखको और भी उत्तरोत्तर बढ़ानेवाली हैं ! इस वियोगमें दुःख और समवेदना प्रकट करनेके सिवाय समझमें नहीं आता कि हम किस प्रकारसे आपकी वृद्धा माता और असहाया विधवाको धैर्य बँधावें अथवा दिलासा दें। संसार और कर्मोंकी गति बड़ी ही विचित्र है; कुछ भी कहते नहीं बनता ! श्रीजैनधर्मके प्रतापसे इन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनाथ अबलाओंको धैर्य तथा शान्तिकी प्राप्ति हो और कुमार साहबकी आत्मा सद्गति पावे, यही हमारी आन्तरिक भावना है।

पुस्तक-परिचय।

१-तत्वार्थसूत्र, अँग्रेजी अनुवाद सहित।

आराकी 'दि सेक्रेड बुक्स आफ् दि जैन्स'—अर्थात्, जैनियोंके पवित्र ग्रन्थ' नामकी ग्रन्थमालाका द्वितीय ग्रन्थ। प्रकाशक कुमार देवेन्द्रप्रसादजी आरा। पृष्ठसंख्या सब मिलाकर २४० और मूल्य कपड़ेकी जिल्द सहित, साढ़े चार रुपये।

यह श्री उमास्वाति आचार्यके सुप्रसिद्ध तत्वार्थ सूत्रका अँग्रेजी अनुवाद है जिसे मिस्टर जे० एल० जैनी साहब बैरिस्टरने ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी सहायतासे तय्यार किया है। यद्यपि इस सारे अनुवादको देखनेका हमें अवसर नहीं मिला तो भी हमने जहाँतक देखा है, उससे ऐसा मालूम होता है कि अनुवाद प्रायः अच्छा है और अच्छे ढंगसे किया गया है। सूत्रोंके अनुवादके बाद बहुधा नोट्स और टीकासे पुस्तकको अलंकृत किया गया है। मूल सूत्रोंको सबसे पहले देवनागरी अक्षरोंमें, और उसके बाद अँग्रेजी अक्षरोंमें दिया है। अनुवादादि करते समय खास खास शब्दोंको भी दोनों अक्षरोंमें जाहिर किया है, जिससे वे लोग पूरा लाभ उठा सकें जो 'देवनागरी' का एक अक्षर भी नहीं जानते। पुस्तकमें तत्वार्थसूत्रका सार, ग्रन्थका विषयविभाग, दिगम्बर और श्वेताम्बराम्नायके सूत्रपाठोंका भेदप्रदर्शक कोष्ठक* और साधारण अनुक्रमणिका लगाकर उसे विशेष उपयोगी बनाया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तकके तय्यार करनेमें बहुत कुछ परिश्रमसे काम लिया गया है, जिसके लिए बैरिस्टर साहब और ब्रह्मचारीजी दोनों धन्यवादके पात्र हैं। बैरिस्टर साहबकी इस कृतिसे अब अँग्रेजी संसारके लिए भी तत्वार्थसूत्रका दर्वाजा खुल गया है। यह पुस्तक विद्यार्थियोंके विशेष कामकी है, और शायद ज्यादातर उन्हींको लक्ष्य करके तय्यार भी की गई है। इसके शुरूमें पाँच पेजीकी एक, ऐतिहासिक प्रस्तावना भी दी हुई है जो बहुत साधारण है। अच्छा होता, यदि इस प्रस्तावनाके लिखनेमें कुछ विशेष परिश्रम और अनुसन्धानसे काम लिया जाता। इसमें कितनी ही बातें आपत्तिजनक भी हैं। एक स्थानपर यह बतलाया गया है कि ग्रन्थकर्ताका नाम दिगम्बरोंके अनुसार उमास्वामी और श्वेताम्बरोंके अनुसार 'उमास्वाति' है। परन्तु यह बात इतिहासकी दृष्टिसे ठीक नहीं है। दिगम्बरोंके अनुसार भी ग्रन्थकर्ताका नाम प्रायः 'उमास्वाति' ही पाया जाता है—दिगम्बर सम्प्रदायके बीसियों प्राचीन शिलालेख इसी बातकी शिक्षा दे रहे हैं†—कुछ थोड़ेसे आधुनिक उल्लेख ऐसे जरूर हैं जिनमें उमास्वामी नाम भी पाया जाता है। तत्वार्थ सूत्रके रचे जानेकी जो कथा दी है उसके सम्बन्धमें यह नहीं लिखा कि वह कौनसे ग्रन्थसे अथवा कहाँसे

* यह कोष्ठक वही है जो रायचन्द्र जैनशास्त्र-मालामें प्रकाशित 'सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र' के साथ लगा हुआ है। वहींसे उठाकर और उन्हीं देवनागरी अक्षरोंमें यह यहाँ ज्योंका त्यों रक्खा गया है।

† यथा—श्रीमानुमास्वातिरयं यतीशस्तत्वार्थ सूत्रं प्रकटीचकार—श्रवणबेल्गोस्थ शि० ले० नं० १०५।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ली गई है। जान पड़ता है, पं० कलाप्पा निटवेने, सर्वार्थसिद्धिकी प्रस्तावनामें, जो कथा कर्णाटक भाषाकी टीकाके हवालेसे दी है और जिसे पं० नाथूरामजी प्रेमीने तत्वार्थाधिगमकी भाष्य अपनी प्रस्तावनामें दिया था, उसीको कुछ शब्दोंके परिवर्तनके साथ यहाँ उक्त प्रस्तावना परसे अनुवादित कर दिया है। परन्तु निटवे साहबने उक्त कथाको देते समय यह लिख दिया था कि इस समय उस पुस्तकका अभाव होनेसे, जैसा हमको याद है, उसके अनुसार हम कथाको उदाहृत करते हैं*। और इसके अनुसार ही उनके कहनेका वजन था। परन्तु बैरिस्टर साहबने ऐसा कुछ भी नहीं किया जिससे यह कथा सचमुच ही किसी ग्रन्थमें कही हुई समझी जाती है। वास्तवमें उक्त कथा कर्णाटक टीकामें दी हुई कथासे बहुत कुछ भिन्न है जैसा कि हमने 'पुरानी बातोंकी खोज' नामके लेखमें 'तत्वार्थसूत्रकी उत्पत्ति' शीर्षक नोटके द्वारा सूचित किया है†। खेद है कि इसी तरह पर गलतियाँ प्रचलित हो जाती हैं और अनेक प्रकारके भ्रम फैल जाते हैं। तत्वार्थ सूत्रकी टीकाओंका परिचय देते हुए, एक स्थानपर लिखा है कि श्लोक वार्तिकके कर्ता 'श्रीविद्यानन्दी' शक सं० ६८१ में पैदा हुए थे; और दूसरे स्थानपर सिद्धसेन दिवाकरकी मृत्यु वीर संवत् ५०० में बतलाई है। परन्तु इनके लिए कोई प्रमाण नहीं दिया। इन दोनों विद्वानोंके जन्म तथा मृत्युके ऐसे निश्चित संवत् अभीतक कहीं भी देखनेमें नहीं आये और न पबलिकमें प्रकट हुए। जान पड़ता है, आजसे १५ वर्ष पहले जब कि अनुसन्धान बहुत कुछ बाल्यावस्थामें था, पं० नाथूरामजी प्रेमीने तत्वार्थाधिगम भाष्यकी प्रस्तावनामें जो यह सूचित किया था कि 'श्रीविद्यानन्द स्वामी वि० सं० ६८१ के लगभग हुए हैं' और 'महावीर संवत् ५०० के अनुमान श्रीसिद्धसेन दिवाकरका स्वर्गवास हुआ था', उसीको बैरिस्टर साहबने उक्त रूपसे अनुवादित कर दिया है! किसी संवत्के लगभग होनेको आपने उस संवत्में ही पैदा होना और अनुमानसे किसी संवत्के करीबकी मृत्युको उस खास संवत्में ही मृत्युका होना समझ लिया है!

इस पुस्तकके तैयार करनेमें तत्त्वाथ सूत्रादिके हिन्दी संस्करणोंपरसे बहुत कुछ सहायता ली गई है। पुस्तकका कितना ही भाग हिन्दीपरसे अनुवादित है; और कुछ भाग ऐसा भी है जो ज्योंका त्यों उठाकर रक्खा गया है; जैसे कि दिगम्बर और श्वेताम्बराम्नायके सूत्रपाठोंका भेदप्रदर्शक कोष्ठक, जो रामचन्द्र-जैनशास्त्रमालामें प्रकाशित सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके (हिन्दी) संस्करणपरसे लिया गया है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी पुस्तकमें एक शब्दद्वारा भी किसीका आभार प्रकट नहीं किया गया और न उन पुस्तकों अथवा उनके लेखकोंका नाम ही दिया है जिनसे इस पुस्तकके प्रस्तुत करनेमें ख़ास सहायता ली गई है। बैरिस्टर साहबकी यह अनुदारता बहुत ही खटकती है। अच्छा होता, यदि वे उन पुस्तकादिकोंके, कमसे कम, नाम दे देते। ऐसा करनेसे, हमारे ख़यालमें, उनकी इस पुस्तकका गौरव जरा भी कम न होता, बल्कि उससे उलटा उनके सिरका भार बहुत कुछ हलका हो जाता। अस्तु; पुस्तककी छपाई, सफाई, कागज और जिल्द सब उत्तम है और वह पढ़ने तथा संग्रह किये जानेके योग्य है।

* साम्प्रतं तत्पुस्तकाभावाद्यथास्मृतमत्रोदाहरिष्यामः।
† देखो जैनहितैषीका गतांक नं० ३—४ पृष्ठ ८०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भारतके प्राचीन राजवंश ।

हिन्दीमें इतिहासका एक अपूर्व ग्रन्थ। इस देशमें पहले जो अनेक वंशोंके बड़े बड़े प्रतापी, दानी और विद्याव्यवसनी राजा महाराज हो गये हैं उनके सच्चे इतिहास हम लोग बिलकुल नहीं जानते। बहुतोंके विषयमें हमने तो झूठी, ऊटपटांग किम्वदन्तियाँ सुन रक्खी हैं और बहुतोंको हम भूल ही गये हैं। इस ग्रन्थमें क्षत्रपवंश, हैहयवंश (कलचुरि) परमारवंश (जिसमें राजा भोज, मुंज, सिन्धुल आदि हुए हैं), चौहानवंश (जिसमें प्रसिद्ध महाराज पृथ्वीराज हुए हैं), सेनवंश और पालवंश तथा इन वंशोंकी प्रायः सभी शाखाओंके राजाओंका सिलसिलेवार और सच्चा इतिहास प्रमाणोंसहित संग्रह किया गया है। शिलालेखों, ताम्रपत्रों, ग्रन्थप्रशस्तियों, फारसी-अरबीकी तवारीखों तथा अन्य अनेक साधनोंसे बड़े ही परिश्रमपूर्वक यह ग्रन्थ रचा गया है। प्रत्येक इतिहासप्रेमीको इसकी एक एक प्रति मँगाकर रखनी चाहिए। इसमें अनेक जैन विद्वानों तथा जैन धर्मप्रेमी राजाओंका भी उल्लेख है। लगभग ४०० पृष्ठोंका कपड़ेकी जिल्द सहित ग्रन्थ है। मूल्य ३) रु०। आगेके भागोंमें गुप्त, राष्ट्रकूट आदि वंशोंके इतिहास निकलेंगे।

नकली और असली धर्मात्मा ।

श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकीलका लिखा हुआ सर्वसाधारणोपयोगी सरल उपन्यास। ढोंगियोंकी बड़ी पोल खोली गई है। मूल्य ॥)

नया सूचीपत्र ।

उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकोंका ६२ पृष्ठोंका नया सूचीपत्र छपकर तैयार है। पुस्तक-प्रेमियोंको इसकी एक कापी मँगा कर रखनी चाहिए। मैनेजर,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

उत्तमोत्तम जैन ग्रन्थ ।

नीचे लिखी आलोचनात्मक पुस्तकें विचारशीलोंको अवश्य पढ़नी चाहिएँ। साधारण बुद्धिके गतानुगतिक लोग इन्हें न मँगावें।

१ ग्रंथपरीक्षा प्रथम भाग। इसमें कुन्दकुन्द श्रावकाचार, उमास्वाति-श्रावकाचार और जिनसेन त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थोंकी समालाचना है। अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि ये असली जैनग्रन्थ नहीं हैं—भेषियोंके बनाये हुए हैं। मूल्य ।=)

२ ग्रंथपरीक्षा द्वितीय भाग। यह भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रन्थकी विस्तृत समालोचना है। इसमें बतलाया है कि यह परमपूज्य भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, किन्तु ग्वालियरके किसी धूर्त भट्टारकने १६-१७ वीं शताब्दिमें इस जाली ग्रन्थको उनके नामसे बनाया है और इसमें जैनधर्मके विरुद्ध सैकड़ों बातें लिखी गई हैं। इन दोनों पुस्तकोंके लेखक श्रीयुक्त बाबू जुगुलकिशोरजी मुख्तार हैं। मूल्य ।)

३ दर्शनसार। आचार्य देवसेनका मूल प्राकृत ग्रन्थ, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अनुवाद और विस्तृत विवेचना। इतिहासका एक महत्वका ग्रन्थ है। इसमें श्वेताम्बर, यापनीय, काष्ठासंघ; माथुरसंघ, द्राविड़संघ आजीवक (अज्ञानमत) और वैनेयिक आदि अनेक मतोंकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप बतलाया गया है। बड़ी खोज और परिश्रमसे इसकी रचना हुई है।

आत्मानुशासन ।

भगवान् गुणभद्राचार्य्यका बनाया हुआ यह ग्रन्थ प्रत्येक जनीके स्वाध्याय करने योग्य है। इसमें जैनधर्मके असली उद्देश्य शान्तिसुखकी ओर आकर्षित किया गया है। बहुत ही सुन्दर रचना है। आजकल·

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की शुद्ध हिन्दीमें हमने न्यायतीर्थ न्याय-शास्त्री पं० वंशीधरजी शास्त्रीसे इसकी टीका लिखवाई है और मूलसहित छपवाया है। जो जैनधर्मके जाननेकी इच्छा रखते हैं, उन अजैन मित्रोंको भेंटमें देने योग्य भी यह ग्रन्थ है। मूल्य २)

युक्त्यनुशासन सटीक।

माणिकचन्द्र-जैनग्रन्थमालाका १५ वाँ ग्रन्थ छपकर तैयार हो गया। इसके मूलकर्ता भगवान् समन्तभद्र और संस्कृत टीकाके कर्ता आचार्य विद्यानन्दि हैं। यह भी देवागमकी भाँति स्तुत्यात्मक है और युक्तियोंका भाण्डार है। अभी तक यह ग्रन्थ दुर्लभ था। प्रत्येक भण्डारमें इसकी एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए मू०।॥)

नियमसार।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका यह बिलकुल ही अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। लोग इसका नाम भी नहीं जानते थे। बड़ी मुश्किलसे प्राप्त करके यह छपाया गया है। नाटक समयसार आदिके समान ही इसका भी प्रचार होना चाहिए। मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया, आचार्य पद्मप्रभमलधारि देवकी संस्कृत टीका और श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत सरल भाषाटीकासहित यह छपाया गया है। अध्यात्मप्रेमियोंको अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। मूल्य २) दो रु०।

नयचक्र संग्रह।

यह उक्त ग्रन्थमालाका १६ वाँ ग्रन्थ है। इसमें देवसेनसूरिकृत प्राकृत नयचक्र (संस्कृतच्छायासहित) और आलाप पद्धति तथा माइल्ल धवलकृत द्रव्यस्वभावप्रकाश (छायासहित) ये तीन ग्रन्थ छपे हैं। भूमिका पढ़ने योग्य है। तैयार हो गया। मूल्य ॥।=)

पार्श्वपुराण भाषा।

कविवर भूधरदासजीका यह अपूर्व ग्रन्थ दूसरी बार छपाया गया है। इसकी कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। जैनियोंके कथाग्रन्थोंमें इससे अच्छी और सुन्दर कविता आपको और कहीं न मिलेगी। विद्यार्थियोंके लिये भी बहुत उपयोगी है। शास्त्रसभाओंमें बाँचनेके योग्य है। बहुत सुन्दरतासे छपा है। मूल्य सिर्फ १) रु०।

कथामें जैनसिद्धान्त।

एक मनोरंजक कथाके द्वारा जैनधर्मकी गूढ़ कर्म-फिलासफीको सरलतासे समझना हो और एक बढ़िया काव्यका आनन्द लेना हो तो आचार्य सिद्धर्षिके बनाये हुए 'उपमितिभवप्रपञ्चाकथा' नामक संस्कृत ग्रन्थके हिन्दी अनुवादको अवश्य पढ़िये। अनुवादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी। मूल्य प्रथम भागका ॥।) और द्वितीय भागका ।-) जैन साहित्यमें अपने ढंगका यही एक ग्रन्थ है।

संस्कृत ग्रंथ।

१ जीवन्धरचम्पू-कवि हरिचन्द्रकृत। १।)
२ गद्यचिन्तामणि-वादीभसिंहकृत। २)
३ जीवन्धरचरित-गुणभद्राचार्यकृत। १)
४ क्षत्रचूड़ामणि-वादीभसिंहकृत। मू० १)
५ यशोधरचरित-वादिराजकृत। मू० ॥)

चरचा समाधान। पं० भूधरमिश्रकृत। भाषाका नया ग्रन्थ। हालहीमें छपा है। मूल्य २॥-)

मैनेजर, जैनग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव बम्बई।

बम्बईका माल।

बम्बईका सब तरहका माल—कपड़ा, किराना, स्टेशनरी, पीतल, ताँबा, दवाइयाँ, तेल, साबुन आदि—हमसे मँगाइये। माल दस जगह जाँचकर बहुत सावधानी और ईमानदारीके साथ भेजा जाता है। चौथाई रुपयेके लगभग पेशगी भेजना चाहिए। एक बार व्यवहार करके देखिये।

नन्हेलाल हेमचंद जैन,
कमीशन एजेण्ट,
चन्दाबाड़ी, पो० गिरगाँव, बम्बई।

Printed & Published by G.K. Gurjar at Sri Lakshmi Narayan Press, Jatanbar, Benares City, for the Proprietor Nathuram Premi of Bombay 114-21.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org